* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

वर्ष ९८

संख्या २

गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीरामजन्मभूमिमें नवप्रतिष्ठित बालक रामकी दिव्य झाँकी

श्रीरामकी बालछवि

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥

वर्ष ९८

गोरखपुर, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०८०, श्रीकृष्ण-सं० ५२४९, फरवरी २०२४ ई०

संख्या २

पूर्ण संख्या ११६७

श्रीरामकी बालछवि

काम कोटि छबि स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा॥
अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती॥
रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे॥
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गभीर जान जेहिं देखा॥
भुज बिसाल भूषन जुत भूरी। हियँ हरि नख अति सोभा रूरी॥
उर मनिहार पदिक की सोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा॥
कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छबि छाई॥
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे॥
सुंदर श्रवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला॥
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे॥
पीत झगुलिआ तनु पहिराई। जानु पानि बिचरनि मोहि भाई॥
रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेषा। सो जानइ सपनेहुँ जेहिं देखा॥

[श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,८०,०००)

कल्याण, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०८०, श्रीकृष्ण-सं० ५२४९, फरवरी २०२४ ई०, वर्ष ९८—अंक २

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- श्रीरामकी बालछवि	३
२- सम्पादकीय	५
३- कल्याण	६
४- **अयोध्याके नव्य राममन्दिरमें दिव्य प्राणप्रतिष्ठा [आवरण-कथा]**	७
५- काममें लानेयोग्य आवश्यक बातें (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	९
६- आश्चर्यकी बात! (सन्तप्रवर श्रद्धेय श्रीपथिकजी महाराज)	१०
७- भगवत्-शरणागति (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	११
८- भगवान्‌का मंगलमय विधान (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	१२
९- भगवान् भावके भूखे हैं **[साधकोंके प्रति]** (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१३
१०- श्रीधाम वृन्दावन (पं० श्रीगंगाधरजी पाठक 'मैथिल')	१४
११- निकुंजलीला के अनन्य रसिकभक्त नागाजी	१६
१२- श्याम-बलरामकी एक मनोरम बाललीला (श्रीसुदर्शन सिंहजी 'चक्र')	१७
१३- बहुमतका सत्य **[बोध-कथा]**	१८
१४- गणित-दर्शन (आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')	१९
१५- शिवका निवास—कैलास (श्रीओमप्रकाशजी श्रीवास्तव, आई०ए०एस०)	२२
१६- 'प्रगटे महिभार उतारन को' **[कविता]** (श्रीशरदजी अग्रवाल)	२६
१७- मध्य भारतकी लोक संस्कृतिमें राम (डॉ० श्रीमती सुमनजी चौरे)	२७
१८- मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम **[कविता]** (पद्मश्री श्रीअभिराज राजेन्द्रजी मिश्र)	३१
१९- 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की सोच नितान्त आवश्यक (श्रीश्यामसुन्दरजी मिश्र)	३२
२०- बड़ा त्यागी **[बोध-कथा]**	३३
२१- श्रीविष्णुचित्त (पेरि-आळवार) **[सन्त-चरित]**	३४
२२- वैराग्य (श्रीरूपचन्दजी शर्मा)	३६
२३- छत्तीसगढ़स्थित माता कौसल्याका मन्दिर **[तीर्थ-दर्शन]** (डॉ० श्रीप्रदीप कुमारजी शर्मा)	३८
२४- प्रभु राम अवध में लौटे हैं **[कविता]** (श्रीब्रह्मबोधिजी)	४०
२५- अमृततुल्य आयुर्वेदिक औषधि—सितोपलादि चूर्ण **[आरोग्य-चर्चा]** (श्रीगोवर्धनदासजी बिन्नानी)	४१
२६- प्राचीन भारतमें गोसेवाके अद्भुत उदाहरण **[गो-चिन्तन]** (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	४३
२७- सुभाषित-त्रिवेणी	४४
२८- व्रतोत्सव-पर्व **[चैत्रमासके व्रत-पर्व]**	४५
२९- कृपानुभूति	४६
३०- पढ़ो, समझो और करो	४७
३१- मनन करने योग्य	५०

चित्र-सूची

१- श्रीरामजन्मभूमिमें नवप्रतिष्ठित रामललाकी दिव्य झाँकी	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- श्रीरामकी बालछवि	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- ब्रह्माजीद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति	(इकरंगा)	१४
४- श्रीविष्णुचित्त (पेरि-आळवार)	(,,)	३४
५- चन्दखुरीके कौसल्यामन्दिरका श्रीविग्रह	(,,)	३८

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / एकवर्षीय शुल्क ₹300 मासिक अंक साधारण डाकसे
पञ्चवर्षीय शुल्क ₹2500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / पञ्चवर्षीय शुल्क ₹1500 मासिक अंक साधारण डाकसे
विदेशमें Air Mail शुल्क वार्षिक US$ 50 (₹4,000) / Cheque Collection Charges 6 $ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका** आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**, सहसम्पादक—**कृष्णकुमार खेमका**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org**	e-mail : **kalyan@gitapress.org**	✆ **09235400242/244**	**WhatsApp : 9648916010, 8188054404**

सदस्यता-शुल्क —**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता हेतु gitapress.org के **Kalyan** पर click करके **Subscribe** option पर click करें।
'कल्याण' के मासिक अङ्क www.gitapress.org के **E-Books Option** पर नि:शुल्क पढ़ें।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

॥ श्रीहरि: ॥

कल्याणकारी साधनोंकी लम्बी सूचीमें भगवन्नामरूपी साधनकी सबसे बड़ी विशेषता मुझे यह प्रतीत होती है कि इसमें किसी विधि-विधानकी जकड़न नहीं है।

'नास्ति अस्य विधि:'—**यह उपनिषद्का वचन है।**

अत: इस दुर्गम कलिकालमें जब जितना और जिस तरह बन सके, नामस्मरणका आश्रय लेना चाहिये। इसीमें सब प्रकारसे कल्याण है।

—सम्पादक

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

कल्याण

याद रखो—जैसे किसी दरिद्रका नाम कुबेर रख देनेसे वह धनवान् नहीं हो जाता, वैसे ही किसी साधारण व्यक्तिका सन्त-महात्मा नाम रखनेसे वह सन्त-महात्मा नहीं हो जाता। किसीको कोई सन्त-महात्मा कहता हो, जो अपना परिचय सन्त-महात्माके नामसे देता हो, जिसकी जगत्में बड़ी ख्याति हो और जिसकी सब ओर पूजा-प्रशंसा या स्तुति-प्रार्थना होती हो, पर जो वस्तुतः सन्त-महात्मा न हो; उसके कहने-कहलानेका या ख्याति-पूजा-प्रार्थना प्राप्त करनेका कुछ भी मूल्य नहीं है। वह धोखा देता है और स्वयं धोखा खाता है। इसलिये सन्त-महात्मा कहलाओ मत, अपनेको सन्त-महात्मा मानो मत—सन्त-महात्मा बनो। जो जगत्में प्रशंसा-पूजा पानेके लिये भोग-वैभव, मान-सम्मान या यश-कीर्ति प्राप्त करनेके लिये सन्त-महात्मा बना हुआ है, वह सन्त-महात्मा नहीं है।

याद रखो—सन्त वह है, जो सब जगह सर्वदा सत्को—भगवान्को देखता है, महात्मा वह है, जो समस्त चराचरमें वासुदेवके दर्शन करता है; जो स्वयं भगवद्भावको प्राप्त है, जगत्में भगवद्भाव देखता है और सबको भगवद्भाव प्रदान करता है।

याद रखो—जो अपने भगवद्भावयुक्त आचरण-व्यवहारसे दूसरोंके अन्दर भगवद्भाव ला देता है, उनके अन्दर सोये हुए भगवान्को जगा देता है, वह भगवान्की, जगत्की और अपनी बड़ी सेवा करता है। इसके विपरीत, जो अपने आसुरीभावयुक्त आचरण-व्यवहारसे दूसरोंके अन्दर भगवद्विरोधी असुरभावको उत्पन्न कर देता है, उनके अन्दर सोये हुए शैतानको प्रबुद्धकर उसे बढ़ा देता है, वह भगवान्की, जगत्की और अपनी बहुत बड़ी हानि करता है। इसलिये सदा-सर्वदा अपनेको भगवद्भावसे युक्त रखो और संसारमें पद-पदपर भगवान्को प्रबुद्ध करते रहो। तभी सन्त-महात्मा बन सकोगे।

याद रखो—सन्त-महात्मामें अभिमान या गर्व होता ही नहीं, जो सन्त-महात्मापनका—पारमार्थिकता या आध्यात्मिकताका गर्व करता है, वह सच्चे परमार्थ और अध्यात्मसे बहुत दूर है। धन और अधिकारके अभिमानकी अपेक्षा परमार्थ और अध्यात्मका अभिमान कहीं भयानक पतनकारक सिद्ध होता है।

याद रखो—सच्चा सन्त-महात्मा न तो अपनेको सन्त-महात्मा मानता है, न घोषित करता है और न दूसरेके द्वारा कहे जानेपर उसे स्वीकार ही करता है। विनय या नम्रताकी दृष्टिसे नहीं, वस्तुतः सच्चे सन्तको अपनेमें विशेषता दीखती ही नहीं। वह सर्वत्र भगवान्की महिमा देखता है और उसीमें सहज स्थित रहता है। वह त्यागका भी त्यागी होता है। किसी प्रकारका गर्व-दर्प-अभिमान उसके पास भी नहीं फटक पाता।

याद रखो—सच्चा सन्त प्रचारके लिये या किसीके उद्धारके लिये अभिमानपूर्वक कोई प्रयास नहीं करता, विचार भी नहीं करता। वह तो सदा अपने-आपमें रमण करता, आत्माराम रहता है अथवा स्वान्तःसुखाय उसके द्वारा उसके अपने प्रियतम प्रभुकी प्रीति-सुधा-रसका प्रवाह बहने लगता है। वह संसारके उद्धारके लिये कोई आग्रह या प्रयत्न नहीं करता, उसका वह आत्मरमण अथवा उसकी वह स्वतः प्रवाहित प्रियतमकी प्रीति-सुधा-रसकी मधुर धारा संसारके सम्पूर्ण दुःख-दावानलको, सारी मृत्युकी विभीषिकाको, समस्त ज्वाला-यन्त्रणाको हरकर उसे सच्चे सुखके शुभ दर्शन करवाकर आत्यन्तिक सुखकी उपलब्धि करा देता है। इसीमें सन्तका सहज सन्तपन है, यही महात्माका माहात्म्य और महत्त्व है।

याद रखो—सच्चे सन्त-महात्मा वासना, कामना, ममता, आसक्ति एवं दर्प-अभिमानसे सर्वथा रहित होते हैं, इससे न तो उन्हें स्वयं अपने सन्तपनका स्मरण रहता है और न वे दूसरोंको ही इसकी स्मृति दिलाते हैं। अतः उनके द्वारा ऐसा कुछ कार्य होता ही नहीं, जिसमें सन्त कहलानेकी उनकी छिपी वासना भी हो। कहलाना वही चाहते हैं, जो हैं नहीं; जो हैं, वे तो हैं ही। अतएव इन सच्चे सन्त-महात्माओंका आदर्श सामने रखकर तुम सच्चे सन्त-महात्मा बनो। **'शिव'**

आवरण-कथा— अयोध्याके नव्य राममन्दिरमें दिव्य प्राणप्रतिष्ठा

अशेष-'कल्याण'-परम्पराया
मूलं जगन्मूल-दयैकमूलम्।
सतां निधानं जगतां प्रधानं
नुमो वयं 'रामलला'-भिधानम्॥

जो समस्त 'कल्याण'परम्पराके मूल हैं, इस जगत्के मूल हैं, और करुणाके भी एकमात्र मूल हैं। सत्पुरुषोंकी निधि, सर्वलोकप्रधान उन भगवान् 'रामलला' की हम वन्दना करते हैं।

सप्तपुरियोंमें अग्रगण्य परमपावन मोक्षदायिका अयोध्यापुरीमें पौष शुक्ल कूर्म-द्वादशी सं० २०८० विक्रमी सोमवार (तदनुसार २२ जनवरी २०२४ ई०)-को वह चिरप्रतीक्षित अनुपम आह्लादपूर्ण शुभबेला आयी, जब भगवान् श्रीराम शताब्दियोंके निर्वासन एवं प्रतीक्षाके बाद पूर्ण गरिमा एवं वैभवके साथ अपनी जन्मभूमिमें मूलस्थानपर बने नवीन भव्य-दिव्य मन्दिरमें पुनः विराजित हो गये।

संसारके समस्त रामभक्त पुलकित हो उठे, शताब्दियोंके बाद उनकी मनवीणाके तार झंकृत हो उठे। कितने ही नृत्य करने लगे, सर्वत्र जय-जयकार होने लगी, आनन्दके अतिरेकमें कितनोंने कितने आनन्दाश्रु बहाये, इसकी तो गणना ही सम्भव नहीं है।

वस्तुतः हम सभी कृतार्थ हुए, हम सभी उऋण हुए, हम सभी अपराधबोधसे मुक्त हुए और हम सभी आह्लादित एवं गौरवान्वित भी हुए। यह हम सबके लिये सौभाग्यकी बात है कि हम युगान्तरतक स्मरणीय इन क्षणोंके साक्षी बने हैं।

यह केवल किसी सम्प्रदाय या दलविशेषके लिये गौरवके क्षण नहीं, अपितु सम्पूर्ण राष्ट्रके लिये गौरवके क्षण हैं; क्योंकि राम सबके हैं, वे भेदभावकी सीमाओंसे भी परे हैं, वे धर्मके मूर्तिमान् स्वरूप हैं, वे मर्यादापुरुषोत्तम हैं। वे राजाओंके भी आराध्य हैं, वे वंचितों और उपेक्षितोंको भी गले लगानेवाले हैं। वे शस्त्र भी धारण करनेवाले हैं, शास्त्रकी रक्षा भी करते हैं। वे वज्रवत् कठोर भी हैं, वे कमलदलवत् कोमल भी हैं। वे दृढ़ भी हैं, पर व्यावहारिक भी हैं। कितना कहा जाय—राम अद्वितीय हैं।

सनातन हिन्दू संस्कृति एवं उदात्त मानवीय मूल्योंकी कीर्तिपताकाको दिग्-दिगन्ततक फहरानेवाले भगवान् श्रीरामका चरित्र, व्यक्तित्व और कृतित्व सम्पूर्ण मानव सभ्यताके इतिहासमें अद्वितीय स्थान रखता है। हम सभी जानते हैं कि सूर्यवंशी रघुकुलश्रेष्ठ अयोध्यापति महाराज दशरथके यहाँ पुत्ररूपमें अवतरित हुए श्रीराम स्वयं लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु ही थे। उन्होंने एक ओर अपने प्रेमीभक्तोंके भक्तिभावको सदा पल्लवित-पुष्पित करनेवाली दिव्य लीलाएँ कीं, तो दूसरी ओर राक्षसोंके आतंकसे त्रस्त राष्ट्र ही नहीं अपितु विश्व मात्रको सान्त्वना प्रदान की और अन्ततः समस्त राक्षसी आतंकका सफलतापूर्वक समूल नाश करके सर्वकल्याणकारी रामराज्यकी स्थापना भी की।

त्रेतामें भगवान् श्रीराघवेन्द्र सरकारद्वारा लीला-संवरण करनेके उपरान्त महाराज कुशने इस अयोध्या और उसके हृदयस्वरूप श्रीरामजन्मस्थानका पुनरुद्धार किया एवं कालान्तरमें सम्राट् विक्रमादित्यने जिसपर भव्यातिभव्य राममन्दिर बनवाया, उसे धर्मान्ध मुगल आक्रमणकारी बाबरने धार्मिक विद्वेषके वशीभूत होकर ध्वस्त करके हिन्दुओंका मान-मर्दन करनेमें ही सुख माना।

सनातनधर्मी हिन्दू समाजके हृदयपटलपर असह्य चोट पहुँची, विगत लगभग ५०० वर्षोंसे उसके हृदयमें अपने आराध्यका यह अपमान शूलकी तरह चुभता रहा। परंतु दुर्भाग्यवश परतन्त्र होनेके कारण वह कुछ विशेष न कर सका, परंतु उसने हार नहीं मानी। रामजन्मभूमिकी मुक्तिके लिये समय-समयपर अनेकानेक प्रयास होते रहे, सशस्त्र विद्रोह भी हुए, जिनमें असंख्य वीर सपूतोंने अपने प्राण न्योछावर कर दिये, आज हम उन सबके नाम भी नहीं जानते, पर निःसन्देह आज उनका बलिदान सार्थक हुआ।

इस राष्ट्रीय मुद्देको; जो हमारी अस्मिताका प्रश्न था, उसे ब्रिटिश शासनकालसे लेकर स्वतन्त्रताप्राप्तिके बाद भी कतिपय राजनैतिक दलोंने अपने निहित स्वार्थोंके कारण उलझाये रखा।

भगवान् अपना कार्य उसीके माध्यमसे कराते हैं,

जिसको वे इसके लिये गौरव प्रदान करना चाहते हैं और वह कार्य तभी होता है, जब वे उचित समझते हैं।

श्रीरामजन्मभूमि-मुक्ति-संघर्षके नवीन प्रयास; जो चार दशक पूर्व हिन्दुत्वप्रेमी राष्ट्रीय दलोंद्वारा व्यापक जन-समर्थनके साथ आगे बढ़ाये गये, वे अब जाकर फलोन्मुख हुए हैं। दृढ़ संकल्पित वर्तमान राजनैतिक नेतृत्वकी सक्रियताके कारण तथा निर्भय एवं निष्पक्ष सर्वोच्चन्यायालयद्वारा वरीयताके साथ समयबद्ध एवं त्वरित सुनवाईके कारण ९ नवम्बर, २०१९ ई० में आया ऐतिहासिक निर्णय मन्दिरके पक्षमें रहा। हिन्दूविरोधी इतिहासकारों एवं तथाकथित धर्मनिरपेक्ष राजनैतिक शक्तियोंने अन्ततक मन्दिर-निर्माणके मार्गमें बाधा डालनेका हरसम्भव प्रयास किया, परंतु अकाट्य पुरातात्त्विक साक्ष्यों तथा ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दस्तावेजोंके आधारपर वही उद्घाटित हुआ, जो सत्य है।

२२ जनवरीको अभिजित् मुहूर्तमें वह पावन बेला स्वयंको धन्य करनेको व्याकुल हो उठी, जब अयोध्यामें जन्मस्थानपर भगवान् श्रीरामके दिव्य स्वरूपकी प्राणप्रतिष्ठाका कार्य पूर्ण होकर माननीय प्रधानमन्त्री श्रीनरेन्द्र मोदीजीके कर-कमलोंसे यह अद्वितीय भव्य मन्दिर कोटि-कोटि रामभक्तोंके कल्याणका मार्ग प्रशस्त करनेहेतु लोकार्पित हुआ।

नागरशैलीमें बन रहे तीन तलोंवाले इस भव्य राममन्दिरमें भूतलमें स्थित प्रधान गर्भगृहमें भगवान् श्रीरामकी नवीन प्रतिमाकी प्राण-प्रतिष्ठा हुई है। कृष्ण पाषाणसे निर्मित इस नयनाभिराम अद्वितीय प्रतिमामें पंचवर्षीय बालक श्रीरामकी छविको बड़ी कुशलतासे गढ़ा गया है। देशके मूर्धन्य चित्रकारों एवं शिल्पकारोंकी भी कठोर परीक्षा लेकर श्रीरामजन्मभूमि तीर्थक्षेत्र ट्रस्टके विद्वानोंद्वारा सर्वोत्कृष्ट कलाकारका चयन किया गया। तत्पश्चात् शास्त्रीय मर्यादाओंके अनुसार कुछ संशोधन करते हुए उक्त स्वरूप निश्चित हो सका। अन्ततः काशीके चित्रकार डॉ० श्रीसुनीलजी विश्वकर्माके रेखाचित्रके अनुसार मैसूरके मूर्तिकार श्रीअरुणजी योगिराजने प्रतिमाको गढ़कर साकार किया। हम सभी इन कलाकारोंके आभारी रहेंगे।

दैवी प्रेरणासे बनी इस अद्भुत प्रतिमामें कई विशेषताएँ भी हैं। यह सम्पूर्ण प्रतिमा श्यामवर्णकी एक मेटाफार्मिन चट्टानमें उकेरी गयी है, जो ३ अरब वर्ष पुरानी है। सोपस्टोन श्रेणीका यह पाषाणखण्ड मैसूरके निकट गुज्जेगौदानपुरामें विशेषरूपसे खनन करके प्राप्त किया गया है। इस चिकने पाषाणपर मौसम तथा अभिषेक आदि क्रियाओंसे किसी प्रकारका क्षरण नहीं होता।

यह प्रतिमा ५१ इंच ऊँची तथा तीन फीट चौड़ी है तथा इसका वजन लगभग २००० किलोग्राम है। प्रतिमामें पंचवर्षीय भगवान् बालक राम कमलके आसनपर प्रसन्नमुद्रामें मन्द-मन्द मुसकाते हुए खड़े हैं। उन्होंने हाथमें स्वर्णमय धनुष और तीर धारण किया हुआ है। उनके चतुर्दिक् जो तोरण बना है, उसमें सबसे ऊपर भगवान् सूर्यकी आकृति है, उनके सन्निकट प्रणव, पद्म, चक्र, गदा, शंख एवं स्वस्तिकके चिह्न अंकित हैं।

भगवान्के दशावतारोंको क्रमशः दोनों ओर पाँच-पाँचके क्रममें अंकित किया गया है। प्रतिमाके नीचे दायीं ओर हनुमान्जी तथा बायीं ओर गरुड़देवकी सुन्दर आकृति उकेरी गयी है।

कई दिनोंतक चले शास्त्रोक्त विधि-विधानके साथ प्राणप्रतिष्ठाकी सम्पूर्ण क्रिया कर्मकाण्डमें निष्णात देशके मूर्धन्य वैदिक विद्वानोंद्वारा पूर्ण की गयी।

माननीय प्रधानमन्त्री श्रीनरेन्द्र मोदीजीने सम्पूर्ण राष्ट्रके संकल्पको सन्तवृन्दके सहयोगसे जिस प्रकार मूर्तरूप देनेकी अद्भुत व्यवस्था करवायी तथा उ० प्र०के मुख्यमन्त्री योगी श्रीआदित्यनाथजीने जिस प्रकार उसका क्रियान्वयन सुनिश्चित किया, उसको शब्दोंमें व्यक्त करना कठिन है।

आज भगवान् श्रीराम स्वयं विग्रहवान् होकर अयोध्यामें विराजित हैं, वे मन्द-मन्द मुसकानके साथ अपनी कृपादृष्टिसे सभीको अभय एवं अनुग्रह प्रदान कर रहे हैं। इससे बड़ा क्या सौभाग्य हो सकता है!

श्रीरामलला जय बालक राम, जय रघुनन्दन अवध ललाम।
नव्य भव्य मन्दिर सुरधाम, सुरवन्दित जय-जय श्रीराम॥

—सम्पादक

काममें लानेयोग्य आवश्यक बातें

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

सबेरे कम-से-कम सूर्योदयसे एक घंटे पूर्व उठना चाहिये—जैसे ६ बजे सूर्योदय होता हो तो ५ बजे उठना। फिर शौच जाकर, हाथ-पैर-मुँह धोकर कुल्ला करके स्नान करना चाहिये। तदनन्तर अपने अधिकारके अनुसार सन्ध्योपासना तथा गायत्री-जप करना चाहिये। सन्ध्या और गायत्रीका जप सबेरे सूर्योदयसे पूर्व और सायंकाल सूर्यास्तसे पूर्व करना चाहिये तथा सभीको भगवन्नामजप, ध्यान, गीता-रामायण आदिका अर्थ और भावसहित पाठ, स्तुति-प्रार्थना आदि ईश्वरोपासना अवश्य करनी चाहिये। उसके बाद घरमें गुरुजनोंको प्रणाम करके तथा शरीरकी स्थितिके अनुसार व्यायाम करके अपने शरीरके अनुकूल दूध आदि पवित्र पदार्थोंका सेवन करना चाहिये। भोजन नित्य बलिवैश्वदेव करके एवं मौन होकर करना चाहिये।

निम्नलिखित नियमोंका पालन करना चाहिये—

(१) हाथका बुना हुआ पवित्र वस्त्र पहनना।

(२) व्यापारमें झूठ-कपटका, चोरबाजारीका और सेलटैक्स-इन्कमटैक्सकी चोरी आदिका त्याग करना एवं किसीको भी कष्ट न देते हुए दूसरोंको सुख पहुँचानेके उद्देश्यसे सबके साथ सत्यता और विनयपूर्वक निःस्वार्थभावसे व्यवहार करने और हर समय भगवान्‌को याद रखनेका प्रयत्न करना।

(३) बाजारकी, होटलकी, स्टेशनकी, खोमचेकी—बाहरकी बनी हुई किसी प्रकारकी मिठाई, पावरोटी, बिस्कुट-चाय आदिको काममें नहीं लाना। बाजारकी केवल प्राकृतिक चीजें—जैसे साग, फल, मेवा, दूध, घी, अनाज आदि पवित्र पदार्थोंको ही काममें लाना।

(४) चमड़ेकी किसी भी चीजको काममें न लेना।

(५) गाँजा-भाँग, बीड़ी-सिगरेट, तम्बाकू आदि मादक वस्तुओंका सेवन कभी नहीं करना।

(६) ताश, चौपड़, लाटरी, जूआ आदिसे सदा दूर रहना।

(७) सिनेमा, नाटक आदि नहीं देखना, क्योंकि इनमें हर प्रकारसे हानि है।

(८) चमड़ा, चर्बी, हड्डी आदिसे सम्बन्धित अपवित्र—घृणित पदार्थोंको काममें नहीं लाना एवं उनका व्यापार भी नहीं करना।

(९) फालतू कामोंमें, विषय-भोगोंमें, खेल-तमाशोंमें, पाप-कर्ममें, प्रमाद और आलस्यमें तथा अधिक सोनेमें अपने समयको बर्बाद नहीं करना।

(१०) ऐश-आराम, भोग-विलास, स्वाद-शौकमें व्यर्थ खर्च न करना।

(११) भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार आदि सद्‌गुणोंकी वृद्धिके लिये प्रयत्न करना।

(१२) दूसरोंमें अवगुणबुद्धि होनेसे उसके प्रति घृणा होती है और अपनेमें अच्छेपनका अभिमान बढ़ता है, जो महान् हानिकर है।

(१३) दूसरोंकी निन्दा करने और सुननेसे जिसकी हम निन्दा करते या सुनते हैं, उसे बड़ा दुःख होता है, तो यह भी हमको पाप लगता है।

(१४) दूसरोंके दोषोंके चिन्तन, दर्शन, श्रवण और कथनसे उनके संस्कार बीजरूपसे हमारे अन्तःकरणमें जमते हैं, जो भविष्यमें वृक्षरूप होकर हमें भी वैसा ही दोषी बना देते हैं।

(१५) किसीके भी दोषोंकी आलोचना करने, सुनने और कहनेसे उस पापीके पापके अंशका भागी बनना पड़ता है, यानी आंशिक रूपसे उस पापका फलभोग हमें भी करना पड़ता है।

इन सब बातोंको विचारकर मनुष्यको उचित है कि दूसरोंके अवगुण, दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसनको न कभी देखे, न आलोचना करे, न संकल्प करे, न कहे और न सुने; क्योंकि ये सभी कर्म पापमय, महान् हानिकर एवं पतनकारक हैं, अतः कल्याणकामी मनुष्यको इनसे सर्वथा बचकर रहना चाहिये; क्योंकि इन दोषोंके रहते हुए सबमें प्रेम होना तो दूर रहा, उलटे द्वेषकी वृद्धि होती है। प्रेम तो सबमें गुणबुद्धि करनेसे होता है।

आश्चर्यकी बात!

(सन्तप्रवर श्रद्धेय श्रीपथिकजी महाराज)

यह आश्चर्यकी बात है कि जहाँ अनन्त आनन्दकी लहरें उठ रही हैं, जहाँ असीम शान्ति बरस रही है, वहाँ अज्ञानवश मनुष्य नाममात्रके दु:खोंसे भयभीत होकर नहीं जाते और जहाँ अनन्त दु:खोंकी लहरें उठ रही हैं, जहाँ घोर अशान्तिका कुहरा छाया हुआ है, जहाँ रागके गहन गर्त एवं द्वेषकी दुर्गम दीवारें सत्य लक्ष्यको छिपाये हुए हैं, वहाँ नाम-मात्रके सुख-लोभवश अन्धकारमें भटकते हुए प्राणी इस दुर्लभ जीवनका दुरुपयोग कर रहे हैं।

यह भी आश्चर्यकी बात है कि जो परमानन्दस्वरूप, सर्वशक्तिमान् अपने निकट-से-निकट और परम प्रेमास्पद तथा परमात्मदेव हैं, उन परम प्रेममय प्रभुके शरणापन्न न होकर अज्ञानी मनुष्य संसारके पदार्थोंका आश्रय ले रहे हैं, प्रकृतिकी उन शक्तियोंके सेवक बन रहे हैं, जो क्षणभंगुर नितान्त निस्सार तथा भयप्रद हैं।

यह भी आश्चर्यकी बात है कि भौतिक जगत्की जिस भूमिको, जिस सम्पत्तिको तथा संसारमें उत्पन्न होनेवाले शरीर आदि पदार्थोंको अपना मानकर अभिमान करनेवाले असंख्य मनुष्य अन्तमें उन सबको छोड़कर खाली हाथ ही चले गये, उसी भूमिको, उसी सम्पत्तिको और उन्हीं देहादिक पदार्थोंको अपना मानकर अज्ञानी मनुष्य उनमें रागासक्त हो रहे हैं। यह देखते हुए भी कि संसारकी कोई भी वस्तु किसीके साथ नहीं जाती, फिर भी मोहके वशीभूत होकर मनुष्य उन्हीं वस्तुओंको 'मेरी' 'मेरी' कहते हुए मर रहे हैं, जहाँ अपना सदाका संगी शरीर भी साथ नहीं देता, वहाँ दूसरे सम्बन्धियोंके शरीरोंको अपना मानकर उनके सम्बन्ध-विच्छेदमें विकल हो रहे हैं, किंतु अपने समस्त दु:खोंका कारण जो अज्ञानजनित मोह है, उसका त्याग करके विरक्त नहीं होते।

एक आश्चर्यकी बात और भी देखिये, जो वस्तु किसीको देनेसे उसके साथ जाती नहीं है और किसीसे लेनेपर अपने साथ आती नहीं है, उसे अज्ञानवश परस्पर देने और लेनेवाले मानकर अज्ञानी मनुष्य अपने मनको मनाते रहते हैं।

यह और भी आश्चर्यकी बात है कि जहाँ मनुष्य अपने ही समान अनेकों प्राणियोंका अचानक किसी-न-किसी निमित्तसे देहावसान होते देखते हैं, वहाँ अपनी देहकी अचानक, न जाने कब हो जानेवाली मृत्युके लिये सावधान नहीं रहते; बल्कि इसके विरुद्ध ऐसे भावोंको लेकर दैनिक व्यवहारोंमें स्वार्थपरता ही चरितार्थ करते हैं, मानों कोई अविनाशी देह धारण करके आये हों। यह भी आश्चर्यकी बात है कि अज्ञानवश मनुष्य विविध विषयोंमें प्राप्त होनेवाले सुखकी तृष्णाको नाना प्रकारके भोगोंके द्वारा तृप्त करना चाहते हैं, यह तृष्णा तो कभी किसीकी तृप्त होती नहीं, बल्कि तृप्त करनेवाले जीवनको ही यह राक्षसी खा लेती है, फिर भी मनुष्य इसे तृप्त करनेमें ही जीवनका अपव्यय कर रहे हैं।

इस सुखकी तृष्णाकी तृप्ति चाहनेवाले मनुष्योंके खाते-खाते दाँत घिस गये, देखते-देखते आँखें दृष्टिहीन हो गयीं, सुनते-सुनते कान बहरे बन गये, अन्तमें विषयोंको भोगते-भोगते शक्तिहीन और जराजीर्ण हो गये, फिर भी तृष्णा जीर्ण न हुई।

यह भी आश्चर्यकी बात है कि सब कुछ देखने, सुनने, समझनेका दम भरते हुए मानव उसे ही नहीं जानते, जिसके जाननेसे परम सन्तोष प्राप्त होता है; उसे ही नहीं देखते, जिसके देखनेसे परमानन्दका अनुभव होता है, उसके ही विषयमें नहीं सुनते, जिसके विषयमें सुननेसे परम तृप्ति होती है; उसकी ओर नहीं चलते, जिसकी ओर चलनेसे परमधामकी प्राप्ति होती है। सन्त-वचन है—

नारायण सुख-भोग में, मस्त सभी संसार।
कौन मस्त वा मौज में, देखहु आँख पसार॥

भगवत्-शरणागति

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

इहलौकिक और पारलौकिक दु:खोंसे छुटकारा पाकर नित्य अखण्ड परमानन्दकी प्राप्तिके लिये भगवान्‌की शरणागति ही मुख्य उपाय है! जिसने एक बार सर्वभावसे अपनेको परमात्माके चरणोंमें अर्पण कर दिया, वह सदाके लिये निर्भय, निश्चिन्त और परम सुखी हो जाता है। उसके योगक्षेमका समस्त भार भगवान् वहन करते हैं। स्वयं केवट बनकर उनकी जीवन-तरणीको भीषण संसार-सागरकी उत्ताल तरंगोंसे बचाकर सुरक्षितरूपसे परमानन्दमय धाममें पहुँचा देते हैं, उसे किसी प्रकारकी चिन्ता या चाह करनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती, परंतु यह शरणागति क्या वस्तु है और कैसे होती है—इसपर विचार करना है। शरणागति केवल शब्दोंसे नहीं होती। अथवा यों समझकर चुपचाप निकम्मा ही बैठनका नाम भी शरणागति नहीं है कि 'मैं तो उसकी शरण हो गया, मुझे अब किसी कामके लिये हाथ-पैर हिलाने या समझने-सोचनेसे क्या प्रयोजन है। वह आप ही सब ठीक कर देगा, मेरा तो कोई कर्तव्य नहीं है।' यदि यही शरणागति होती, तो प्रत्येक आलसी और तमोऽभिभूत प्रमादी मनुष्य ऐसा कह सकता था। शरणागतिमें क्रियाके त्याग करनेका तो प्रश्न ही नहीं है। शरणागत भक्त तो अपने 'अहम्'को और उस 'अहम्'से सम्बन्ध रखनेवाले प्रत्येक सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भावको परमात्माके अर्पण कर देता है, फिर उसका जीवन परमात्माकी रुचिका जीवन, उसका मन परमात्माकी रुचिका मन, उसकी बुद्धि परमात्माकी बुद्धि बन जाती है और उसकी सारी क्रियाएँ परमात्माके मनोऽनुकूल होने लगती हैं। अबतक तो वह समझता था कि यह संसार मेरा है और इसमें काम करनेवाला मैं हूँ, शरणागत होनेके बाद वह समझने लगता है, सारा संसार परमात्माका है, स्थूल-से-स्थूल, सूक्ष्म-से-सूक्ष्म पदार्थ सभी उसके हैं और उसमें जो कुछ क्रिया होती हुई दृष्टिगोचर होती है सो सभी परमात्माकी दिव्य लीला है, मैं तो निमित्तमात्र हूँ—जो वास्तवमें उन्हींका हूँ और वह परमात्मा अपने ही एक पदार्थको निमित्त बनाकर अपने इच्छानुसार अपने-आपमें ही अपने विनोदके लिये अपने-आप ही अपनी लीला कर रहे हैं। प्रत्येक पदार्थ उन्हींकी सामग्री है। उनकी सामग्री भी कोई उनसे भिन्न वस्तु नहीं है; वह इन सामग्रियोंके रूपमें अपने-आपको प्रकाशित कर रहे हैं। खेल, खिलाड़ी और खिलौने तीनों ही मूलमें और क्रियामें भी एक ही हैं, व्यावहारिक स्थूलदृष्टिसे भेद प्रतीत हो रहा है। इस प्रकार '**अहम्**' और '**मम**' का मन, बुद्धि, इन्द्रिय, शरीर तथा समस्त प्रपंचसहित सर्वभावसे समर्पण ही यथार्थ शरणागतिका स्वरूप है।

इस शरणागतिकी स्थिति प्राप्त करनेके लिये क्रमश: शरीर, वाणी, मन और बुद्धिमें अपनेको परमात्माके अर्पण करना पड़ता है। शरणागतिकी पहचान यही है कि साधक ज्यों-ज्यों शरणागतिके सुख-शान्तिमय, सर्वतापहर, शीतल प्रदेशमें प्रवेश करता है, त्यों-ही-त्यों उसमें निर्भयता और निश्चिन्तताकी वृद्धि होती है। स्नेहमयी जननीकी गोदमें आकर शिशु निर्भय और निश्चिन्त हो जाता है, इसी तरह सर्व सच्चिदानन्दरूपा इस स्नेह-सुधा-समुद्रमयी जगज्जननीकी महिमामयी क्रोडमें आश्रय पाकर साधक निर्भय और निश्चिन्त हो जाता है। उसे फिर कहीं कोई भय नहीं रहता और किसी भी वस्तुकी या किसी भी गतिविशेषकी चाह नहीं रहती। प्रभुके हाथोंमें अपनेको सौंप देनेके बाद भय, चिन्ता और चाह कैसी?

इस शरणागतिके साधनमें साधकको चार बातोंपर विशेष ध्यान रखना पड़ता है, आगे चलकर तो ये चारों उसमें स्वाभाविक ही हो जाती हैं।

१—जिस परमात्माकी शरण ग्रहण की है, उस परमात्माका निरन्तर स्मरण रखना।

२—उसके इच्छा या आज्ञानुसार जीवन बना लेना।

३—वह जो कुछ भी विधान करे, उसीमें परम सन्तुष्ट रहना यानी उसकी कृपासे प्राप्त होनेवाली प्रतिकूल-से-प्रतिकूल स्थितिमें भी उसकी मंगलमयी इच्छा समझते हुए अनुकूलताका प्रतीत होना।

४—किसी भी पदार्थकी चाह न रखना।

ये भाव जितने-जितने बढ़ें, साधक उतना ही परमात्माकी शरणमें अग्रसर हो रहा है, ऐसा समझना चाहिये।

भगवान्‌का मंगलमय विधान

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

श्रीभगवान्‌के मंगलमय विधानके अधीन सारी सृष्टि कार्य कर रही है, उसी मंगलमय विधानसे मानवको यह स्वाधीनता मिली है कि वह मिली हुई वस्तु, योग्यता, सामर्थ्यका विवेकके आदरद्वारा सदुपयोग कर सकता है और विवेकका अनादरकर दुरुपयोग भी कर सकता है।

परम सुहृद्‌का कैसा उदार विधान है कि वाणीका दुरुपयोग करनेपर भी बोलनेकी शक्ति मिलती ही है। इसका अर्थ यह नहीं है कि जिसने बोलनेकी शक्ति दी है, उसने मानवको मिथ्या बोलनेका आदेश दिया है। यदि ऐसा होता तो यह विवेक कि हमसे कोई मिथ्या न बोले, कैसे प्राप्त होता? यह जानते हुए भी कि हमसे कोई मिथ्या न बोले, हम मिथ्या बोलते हैं, अर्थात् अपने प्रति बुराई न चाहते हुए भी परके प्रति बुराई कर बैठते हैं। यह स्वाधीनता मानवेतर किसी अन्य प्राणीको नहीं है। प्राप्त विवेकके अनुरूप करने, धरने, रहने आदिकी प्रेरणा मंगलमय विधानसे मानवको मिली है; पर स्वाधीनताके कारण मानव उस विधानका अनादर करता है। परिणाम स्पष्ट है, समस्त सृष्टिका सिरमौर मानव अनेक प्रकारकी पराधीनता, जड़ता, अभाव आदिमें आबद्ध हो जाता है।

असमर्थता अनुभव करते ही सर्वसमर्थका आश्रय स्वतः प्राप्त होता है। सामर्थ्यका दुरुपयोग ही अकर्तव्य है। अनेक बार सामर्थ्यका दुरुपयोग करनेपर भी वह मिलता ही रहता है। विवश होकर भले ही विधान मानवको रोग, शोक आदिमें आबद्ध करे, उसमें भी उसकी अपार करुणा है। पर यह रहस्य तभी स्पष्ट होता है, जब दुखीपर वैधानिक दृष्टिसे आये हुए दुःखका प्रभाव हो जाता है। दुःख जो स्वभावसे ही प्रिय नहीं है, जिसकी कोई आवश्यकता अनुभव नहीं करता, उसका निर्माण एकमात्र मंगलमय विधानसे ही होता है।

सुखका चला जाना और दुःखका आ जाना, इस विधानसे सभी भलीभाँति परिचित हैं, पर विधानका आदर न करनेसे सुखका जाना और दुःखका आना मानवको रुचिकर नहीं होता। पर जिन्होंने विधानका आदर किया है, वे मानव यह भलीभाँति अनुभव करते हैं कि सर्वतोमुख विकासके लिये सुखका जाना और दुःखका आना अनिवार्य है। सामर्थ्यका सदुपयोग करनेपर जो विकास होता है, असमर्थ होनेपर भी वही विकास होता है। यह कैसा विचित्र विधान है, जिसमें समर्थ और असमर्थ दोनोंका ही हित निहित है।

सामर्थ्यके दुरुपयोगका परिणाम यदि रोग और शोक न होता तो न जाने कितना भयंकर विप्लव हो जाता। प्रवृत्तिके अन्तमें यदि सामर्थ्यके ह्रासका विधान न होता तो मानव न जाने कबतकके लिये प्रवृत्तिमें ही आबद्ध रहता। यदि जन्मके साथ मृत्यु, संयोगके साथ वियोग, उत्पत्तिके साथ विनाश न होता तो न जाने कितनी भयंकर दुर्दशा मानव-समाजकी हो जाती। क्या मृत्यु, वियोग, विनाश और असमर्थता मानवको अविनाशी, नित्य, अनन्त, दिव्य-चिन्मय जीवनकी ओर अग्रसर होनेका पाठ नहीं पढ़ाती? यह सभीको विदित है कि पराधीनताकी पीड़ाने ही स्वाधीनताकी माँग प्रदान की है। इसी प्रकार किसी-न-किसी अभावसे ही पूर्णताकी माँग जाग्रत् होती है। इतना ही नहीं, वर्तमानकी वेदनामें ही भविष्यकी उपलब्धि निहित है। इस विधानकी जितनी महिमा गायी जाय, कम है।

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः॥

जिनके हृदयमें नीलकमलके समान श्यामसुन्दर भगवान् जनार्दन विराजमान हैं, उनका ही लाभ है, उनकी ही जय है, भला उनकी पराजय किससे हो सकती है? [पाण्डवगीता]

साधकोंके प्रति—

भगवान् भावके भूखे हैं

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

गृहस्थमें रहनेवाले एक बड़े अच्छे त्यागी पण्डित थे। त्याग साधुओंका ठेका नहीं है। गृहस्थमें, साधुमें, सभीमें त्याग हो सकता है। त्याग साधुवेषमें ही हो; ऐसी बात नहीं है। पण्डितजी बड़े विचारवान् थे। भागवतकी कथा कहा करते थे। एक धनी आदमीने उनसे दीक्षा ली और कहा—'महाराज! कोई सेवा बताओ।'

धनी आदमी बहुत पीछे पड़ गया तो कहा—'तुम्हें रामजीने धन दिया है तो सदाव्रत खोल दो।' '**अन्नदानं महादानम्**।' 'भूखोंको भोजन कराओ, भूखोंको अन्न दो।' ऐसा महाराजने कह दिया। वह श्रद्धालु था। उसने शुरू कर दिया। दान देते हुए कई दिन बीत गये। मनुष्य सावधान नहीं रहता है तो हरेक जगह अभिमान आकर पकड़ लेता है। उसे देनेका ही अभिमान हो गया कि 'मैं इतने लोगोंको अन्न देता हूँ।' अभिमान होनेसे नियत समयपर तो अन्न देता और दूसरे समयमें कोई माँगने आता तो उसकी बड़ी ताड़ना करता; तिरस्कार, अपमान करता, क्रोधमें आकर अतिथियोंकी ताड़ना करते हुए कह देता कि सभी भूखे हो गये, सभी आ जाते हैं। सबकी नीयत खराब हो गयी। इस प्रकार न जाने क्या-क्या गाली देता।

पण्डितजी महाराजने वहाँके लोगोंसे पूछा कि सदाव्रतका काम कैसा हो रहा है? लोगोंने जवाब दिया—'महाराजजी! अन्न तो देता है, पर अपमान-तिरस्कार बहुत करता है। एक दिन पण्डितजी महाराज स्वयं ग्यारह बजे रात्रिमें उस सेठके घरपर पहुँचे। दरवाजा खटखटाया और आवाज लगाने लगे, 'सेठ! कुछ खानेको मिल जाय।' भीतरसे सेठका उत्तर मिला—'जाओ, जाओ, अभी वक्त नहीं है।' तो फिर बोले—'कुछ भी मिल जाय, ठण्डी-बासी मिल जाय। कलकी बची हुई रोटी मिल जाय। भूख मिटानेके लिये थोड़ा कुछ भी मिल जाय।' तो सेठ बोला—'अभी नहीं है।' पण्डितजी जानकर तंग करनेके लिये गये थे। बार-बार देनेके लिये कहा तो सेठ उत्तेजित हो गया। इसलिये जोरसे बोला—'रातमें भी पिण्ड छोड़ते नहीं, दुःख दे रहे हो। कह दिया ठीक तरहसे, अभी नहीं मिलेगा, जाओ।' पण्डितजी फिर बोले—'सेठजी! थोड़ा ही मिल जाय, कुछ खानेको मिल जाय।' अब सेठजीको क्रोध आ गया। जोरसे बोले—'कैसे आदमी हैं?' दरवाजा खोलकर देखा तो पण्डितजी महाराज स्वयं खड़े हैं। उनको देखकर कहता है—'महाराजजी! आप थे?' पण्डितजीने कहा—'मेरेको ही देता है क्या?', 'मैं माँगूँ तो ही तू देगा क्या?', 'महाराज! आपको मैंने पहचाना नहीं।' 'सीधी बात है, मेरेको पहचान लेता तो अन्न देता। दूसरोंको ऐसे ही देता है क्या? यह कोई देना थोड़े ही हुआ। तूने कितनोंका अपमान-तिरस्कार कर दिया? इससे कितना नुकसान होता है?' सेठने कहा कि 'महाराज! अब नहीं करूँगा।' अब कोई माँगने आ जाय तो सेठजीको पण्डितजी याद आ जाते। **इसलिये सब समय, सब वेषमें भगवान्‌को देखो।** गरीबका वेष धारणकर, अभावग्रस्तका वेष धारणकर भगवान् आये हैं। क्या पता किस वेषमें साक्षात् नारायण आ जायँ। इस प्रकार आदरसे देगा तो भगवान् वहाँ आ जाते हैं। भगवान् तो भावके भूखे हैं। भाव आपके क्रोधका है तो वहाँ भगवान् कैसे आवेंगे। आपके देनेका भाव होता है तो भगवान् लेनेको लालायित रहते हैं। भगवान् तो प्रेम चाहते हैं। प्रेमसे, आदरसे दिया हुआ भगवान्‌को बहुत प्रिय लगता है। ***'दुरजोधनके मेवा त्यागे, साग बिदुर घर खाई।'***

श्रीधाम वृन्दावन

(पं० श्रीगंगाधरजी पाठक 'मैथिल')

श्रीवृन्दावनधाम अखण्ड भूमण्डलका समुज्ज्वल शृंगारस्वरूप है। श्रीवृन्दावनधामकी सेवाके लिये स्वयं '**श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि**' ऐश्वर्याद्यधिष्ठात्री अनन्त-ब्रह्माण्डेश्वरी भगवती इन्दिरा लालायित रहती हैं। व्रजघोषनिवासियोंके परमसौभाग्यकी सराहना करते हुए ब्रह्मा भी विस्मित होकर ऐश्वर्यमाधुर्यादिसारसर्वस्व भगवान्

श्रीकृष्णसे कहते हैं—

एषां घोषनिवासिनामुत भवान्किं देव रातेति न-
श्चेतो विश्वफलात्फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन्मुह्यति।
सद्वेषादिव पूतनाऽपि सकुला त्वामेव देवापिता
यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते॥

(श्रीमद्भा० १०।१४।३५)

हे देव दयानिधे! आप इन व्रजघोषनिवासियोंको क्या देंगे? आप विश्वफलात्मा हैं; आपसे बढ़कर और कोई दूसरी वस्तु क्या हो सकती है, जिसे देकर आप इनसे उऋण हो जायँ? प्राणी विविध प्रकारके ऐहिकामुष्मिक सुखको ही परमपुरुषार्थ समझता है, किंतु जिनके आँगनमें उस परमसुखका परमोद्गमस्थल साक्षात् परब्रह्म परमात्मा ही मूर्तिमान् होकर धूलिधूसरित हुआ क्रीड़ा कर रहा है, उनके लिये वे क्षुद्रातिक्षुद्र सौख्यकण फलरूप कैसे हो सकते हैं? जिन्हें जो वस्तु अप्राप्त होती है, वही उन्हें फलरूपसे स्वीकृत हुआ करती है। अतः जिन्हें आप आत्मीयरूपसे अहर्निश प्राप्त हैं, उन्हें सर्वज्ञ या सर्वशक्तिमान् होकर भी आप क्या दे सकते हैं? इसलिये आपको तो इनका ऋणी बनकर ही रहना पड़ेगा। इस विषयमें मुझ ब्रह्माका भी चित्त विमोहित हो रहा है।

हे विभो! यदि आप ऐसा कहें कि मैं स्वयंको ही समर्पित कर दूँगा, तो इसमें भी कोई महत्त्वकी बात न होगी, क्योंकि जो पूतना दम्भसे माताके समान आचरण दिखलाती हुई आपका अनिष्ट करनेके लिये स्तनोंमें विष लगाकर आयी थी, उसे भी उसके कुलसहित आपने अपने स्वरूपको ही प्राप्त करा दिया था; फिर जिनके धन, धाम, स्वजन, प्रिय, आत्मा, प्राण और चित्त आपपर ही न्योछावर हैं, उन वज्रवासियोंको आप क्या देंगे? उनके तो आप सदैव ऋणी ही रहेंगे। अहो! जिन व्रजबालकोंका उच्चस्वरसे किया हुआ हरिगुणगान तीनों लोकोंको पवित्र कर देता है, हम उनके चरणकमलोंकी बारम्बार वन्दना करते हैं।

ब्रह्मा भी जिस व्रजरजको चूमनेके लिये सीना तानकर इस दिव्य भूमिमें प्रवेशका साहस नहीं करते, दण्डप्रणाम करते आते हैं; उस दिव्यातिदिव्य लोकोत्तरोत्तम भगवद्रसरसिकोंकी रससिद्धराजधानी श्रीवृन्दावनधामकी अनुपमेयताका वर्णन कौन करे! श्रीवृन्दावनधाममें महान् अद्वैताचार्य लीलाशुक श्रीबिल्वमंगलजीकी वेदवेदान्तमें ढूँढ़नेवाली ब्रह्मगति अवरुद्ध हो गयी। वे नन्दकी देहलीपर लटकते हुए ब्रह्मका दर्शन करते ही श्रुति-स्मृतिको किनारे रख कहने लगे—

श्रुतिमपरे स्मृतिमपरे भारतमपरे भजन्तु भवभीताः।
अहमिह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परं ब्रह्म॥

संसारसागरसे भयभीत होकर कोई श्रुतिको भजे, कोई स्मृतिको भजे और कोई महाभारत आदिका भजन करते रहें; बलिहारी हो परंतु मैं तो उस नन्दको भजता हूँ, जिसकी देहलीपर वेदवेदान्तवेद्य परब्रह्म लटक रहा है। महान् वेदधर्मशास्त्रज्ञ जिस बिल्वमंगलने वेदोंके

परमतात्पर्य परब्रह्मको व्रजके कीचड़में सने देखा, वह वेदान्ती उससे मनको हटाकर कितनी देर माला फेर सकता है? नहीं फेर सकता। उन्हें तो कहना पड़ा—

निगमतरौ प्रतिशाखं मृगितं मिलितं न तत्परब्रह्म।
मिलितमिदानीमङ्के गोपवधूटीपटाञ्चले नद्धम्॥
शृणु सखि कौतुकमेकं नन्दनिकेताङ्गणे मया दृष्टम्।
धूलीधूसरिताङ्गो नृत्यति वेदान्तसिद्धान्तः॥

वेदोंकी प्रत्येक शाखाओंमें परब्रह्मको ढूँढ़ा, नहीं मिला; मिला तो कहाँ? नन्दगोपवधूटीके पटांचलसे बँधा-जकड़ा उसकी गोदमें। पुनः वे एक दृश्यदर्शनसे पागल हो कहते हैं—हे सखि! एक अत्यन्त विचित्र आश्चर्य कौतुक सुनो—वेदान्तसिद्धान्त वेदान्तवेद्य परात्पर परब्रह्म परमात्मा तो नन्दरानी माता यशोदाके प्रांगणमें धूलिधूसरित हो 'थेई-थेई' कर नृत्य कर रहा है। भगवत्प्रेमियो! जो ज्येष्ठके प्रचण्ड तापमें नवनीत चुराकर नंगे पाँव भागते अपने परमप्यारे हृदयके दुलारे नन्हे ब्रह्मको देख रहा है, वह आखिर नाक दबाये कितनी देर क्रूरता कर सकता है? क्षणभर भी नहीं। वह तो बिना पल बिताये जूती लेकर कृष्णके पीछे भाग रहा है और अत्यन्त व्याकुल होकर शोर मचा रहा है—

नीतं यदि नवनीतं नीतं नीतं च किं तेन।
आतपतापितभूमौ माधव मा धाव मा धाव॥

हे माधव! तूने मक्खन चुराया तो चुराया, कोई बात नहीं; तुम्हारा ही था। परंतु प्रचण्ड तापसे सन्तप्त भूमिपर नंगे पाँव तो मत भागो, मत भागो लाला; ये जूती पहन लो। अरे ओ मेरे माधव! थोड़ा रुक तो जा, मैं बूढ़ा तुम्हारे पीछे भाग रहा हूँ; अब विशेष मत भगा। बिलकुल थका जा रहा हूँ, मान जा; जूती तो पहन ले।

कृष्णप्रेममें पागल बने ऐसे महामानवको धर्मशास्त्रका पाठ कितना पढ़ाया जा सकता है? रत्तीभर भी नहीं। कृष्णलीलासमाकृष्टचित्त रसखानने ऐसे ही दृश्योंका चित्रांकन किया है—

सेस, महेस, गनेस, दिनेस, सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि, अनन्त, अखण्ड, अछेद, अभेद सुबेद बतावैं॥
नारद-से सुक ब्यास रटैं, पचिहारे, तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीरकी छोहरियाँ, छछियाभरि छाछपै नाच नचावैं॥

जिसके इशारेपर संसार नाचता है, देवता जिसका स्तुतिगान करते थकते नहीं, नारदसे व्यास-शुकपर्यन्त जिसके अलौकिक रूप-गुणका बखान नहीं कर सकते, स्वयं भगवान् वेद भी जिसके लोकोत्तर गुणगणार्णवोंका वर्णन करते थक जाते हैं और 'नेति नेति' की घोषणा कर डालते हैं; आज उस बालक परब्रह्म श्रीकृष्णको व्रजके अहीरोंकी छोहरियाँ थोड़ेसे छाछके लिये इधर-उधर नचा रही हैं। सज्जनो! जो महाभाग अपने परमोपास्य परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णको इस दशामें देख रहा हो, उसे धर्मशास्त्रका कोरा पाठ कितना पढ़ाया जा सकता है? रत्तीभर भी नहीं।

कृष्णग्रहगृहीतात्मा बिल्वमंगल-जैसे कर्मनिष्ठ महात्माको बाध्य होकर कहना पड़ जाता है—'**सन्ध्यावन्दन भद्रमस्तु भवते भो स्नान तुभ्यं नमः**' हे सन्ध्यावन्दन! तुम्हारा कल्याण हो। हे स्नान! तुम्हें भी बार-बार प्रणाम हो आदि। श्रीधामवृन्दावनके दिव्यरजका स्पर्श करते ही एक महान् वेदवेदान्तीको कहना पड़ा—

यत्र प्रविष्टः सकलोऽपि जन्तुरानन्दसच्चिद्घनतामुपैति।

जहाँ प्रवेश करते ही प्राणिमात्र आनन्दसच्चिद्घनताको प्राप्त कर लेता है, आप उस सर्वोपास्य श्रीवृन्दावनधामकी समर्हणा नहीं कर सकते तो विगर्हणा भी मत करो।

आप अहंतावश विशेष नहीं समझना चाहते तो भी वेदादिशास्त्रोंके परमतात्पर्य भगवान् श्रीराम-कृष्णका भजन करो, वे परम दयालु आपकी दृष्टि बदल देंगे और आपका शरीर धारण करना सार्थक हो जायगा। जन्मजन्मान्तरीय सुकृतके परिणामस्वरूप ही नहीं, अनन्तानन्तब्रह्माण्डनायिका भगवती श्रीराधिकाके परम अनुग्रहसे व्रजवृन्दावनके श्यामसिन्धुमें समवगाहनका कदाचित् दिव्यावसर प्राप्त हो सकता है—

अनाराध्य राधापदाम्भोजयुग्मम्
अनाश्रित्य वृन्दाटवीं तत्पदाङ्काम्।
असम्भाष्य तद्भावगम्भीरचित्तान्
कुतः श्यामसिन्धौ रसस्यावगाहः॥

महारासेश्वरी व्रजेश्वरी भगवती श्रीराधामहारानीके चरणयुगलकी समाराधना, उनके चरणारविन्दोंसे समंकित श्रीधामवृन्दाटवीका सुसेवन, उनकी बारम्बार चर्चा एवं गम्भीर चिन्तन किये बिना श्यामरससिन्धुमें समवगाहन कैसे हो सकता है? नहीं हो सकता। किसी प्रकार

भगवच्चिन्तन करनेवालेपर कटाक्ष करना बन्द करो और परमकृपालु दयालु भगवान् श्रीराधाकृष्णके युगलचरणोंका आश्रय लेकर स्वयं और संसारको धन्य करो। काल, अन्न और संगका प्रभाव सबपर पड़ता है, भगवान् सबके शास्ता हैं; आप '**अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा सेवाकथारसमहो नितरां पिब**' संसारके दोष ही नहीं, गुणका भी चिन्तन छोड़ो और भगवद्भागवतसेवाकथारसका पान करो। प्रभुके पावन श्रीचरणोंमें अपनी सम्पूर्ण तर्कयुक्तियोंका समर्पण कर दो और भगवच्छरणकी प्रार्थना करो—

बुद्धिर्विकुण्ठिता नाथ समाप्ता मम युक्तयः।
नान्यत्किञ्चिद्विजानामि त्वमेव शरणं मम॥

हे नाथ! इस भवप्रपंचसे बचनेके लिये मेरी विकुण्ठित बुद्धि काम नहीं कर रही, मेरी सारी तर्कयुक्तियाँ समाप्त हो चुकी हैं और अन्य कोई दूसरा साधन मैं जानता नहीं। हे विभो! अब तो केवल तुम ही मेरी शरण हो, आश्रय हो, रक्षक हो; मेरा कल्याण करो। श्रीवृन्दावनधाम गोलोकविहारी श्रीभगवान्‌की राजधानी या गृह ही नहीं; श्रीवेदव्यासके अनुसार भगवान्‌का दिव्यविग्रह है। यहाँके प्रत्येक प्राणी परम सौभाग्यशाली हैं। भगवान् किससे क्या कराते हैं, वे ही जानते हैं; आप भगवान् और भगवान्‌के भक्तोंका आश्रय ग्रहण करो। आपका कल्याण होगा।

श्रीवृन्दावनधामके परम सौभाग्यशाली मनुष्योंका क्या कहना? यहाँके कीट, पतंग, वृक्ष, तृण, गुल्म, लता, वीरुधोंके सौभाग्यातिशयको देखकर देवता आदि भी किसी रूपमें यहाँके रजमें लोटना चाहते हैं। बड़े-बड़े आत्माराम मुक्त महामुनीन्द्रगण भी श्रीवृन्दारजःसेवनके लिये विविध रूपोंको धारणकर यहाँ विचरण करते हैं। श्रीवृन्दावनरसके समास्वादक सम्मान्य रसिक महाभागगण श्रीवृन्दावनमहिमामृतम् पिलाया करते थे—

भ्रातस्तिष्ठ तले तले विटपिनां ग्रामेषु भिक्षामट
स्वच्छन्दं पिब यामुनं जलमलं चीरैः सुकन्थां कुरु।
सम्मानं कलयातिघोरगरलं नीचापमानं सुधां
श्रीराधामुरलीधरौ भज रसाद् वृन्दावनं मा त्यज॥

हे भाई! वृक्षोंके नीचे-नीचे ठहर जा, गाँव-गाँवमें भिक्षाटन कर, यमुनाका स्वच्छन्द जल पान कर, चीथड़ोंसे उत्तम कन्था तैयार कर, सम्मानको घोरविष और तुच्छापमानको अमृत जान तथा प्रेमसे श्रीराधा-मुरलीधरका भजन कर; परंतु वृन्दावनका त्याग मत कर। श्रीवृन्दावनधाममें रहकर भक्ति चाहनेवाले भक्ति पाते हैं, मुक्ति चाहनेवाले मुक्ति पाते हैं और भुक्ति चाहनेवाले अकल्पनीय भुक्ति पाते हैं।

निकुंजलीला के अनन्य रसिकभक्त नागाजी

पयगाँवके चतुरानागाजी व्रजमें एक अतिप्रसिद्ध भावुक भक्त हो गये हैं। वे आनन्दमग्नावस्थामें नित्य व्रजपरिक्रमा किया करते थे। एक दिन उनकी जटा कदम्बखण्डीकी एक झाड़ीमें उलझ गयी। बहुत प्रयत्न किया, पर नहीं सुलझी, तब आपने निश्चय किया—'जिसने उलझायी है, अब वही आकर सुलझायेगा।' वहाँ गौओंको चराने आनेवाले ग्वालबालों तथा अन्यान्य लोगोंने बहुत प्रार्थना की—'बाबा, हम सुलझा दें।' पर आपने किसीकी न सुनी, अटल निश्चय किया—'बस, अब तो वही आयेगा, तभी सुलझेगी।' आप इसी प्रणयकोप अथवा भावावेशमें बहुत समयतक उसी तरह खड़े रहे। नागाजीकी प्रतिज्ञासे श्रीश्यामसुन्दर अधीर हो उठे। वे आये और नागाजीकी जटा अपने कोमल करोंसे सुलझानेको ज्यों ही उद्यत हुए, नागाजीने रोक दिया। कहा—'पहले आप अपना परिचय दीजिये, आप कौनसे कृष्ण हैं—व्रजके, वनके या निकुंजके? हम तो निकुंजके उपासक हैं।' श्रीप्रभुने कहा—'बाबा, मैं वही हूँ, जाकी तुम उपासना करो हो।' नागाजीने कहा—'कैसे विश्वास हो? इसका प्रमाण कौन दे?' श्रीप्रभुने कहा—'जैसे तुमकूँ विश्वास हो, सोई करो।' नागाजीने कहा—'यदि हमारी श्रीस्वामिनीजू आकर कहें कि हाँ, ये निकुंजके ही श्याम हैं, तब हम मानें।' इतनेमें श्रीव्रजेश्वरी वृषभानुनन्दिनी श्रीस्वामिनीजू भी पधारीं और उन्होंने नागाजीको विश्वास दिलाया कि ये ही नित्यनिकुंज-मन्दिरस्थ श्रीश्यामसुन्दर हैं, तब अनुमति मिलनेपर बड़ी उत्सुकतासे श्रीप्रभुने चार हाथ लगाकर नागाजीकी जटा सुलझायी।

श्याम-बलरामकी एक मनोरम बाललीला

[दाऊ और कनूँ]

(श्रीसुदर्शन सिंहजी 'चक्र')

एक ही जीवनके घनतत्त्वने दो देह धर लिये हैं। उसका एक देह है स्वर्णगौर और दूसरा शरीर है इन्दीवर सुन्दर। दोनोंके शरीरोंके रंग ही दो हैं। एक ही प्राण हैं दोनोंमें। एकके बिना दूसरा रह नहीं सकता।

कौन कहता है कि दोनोंमें भेद नहीं है। भेद बहुत है, बहुत है। फिर भी दोनों अभिन्न हैं, एक हैं।

यह दाऊ है—जैसे सारी गम्भीरता इसमें बचपनमें ही पैर तोड़कर आ बैठी है। किसमें साहस है, जो इसकी तनिक भी उपेक्षा कर दे या इसकी हँसी उड़ा सके। बड़े-बूढ़े मुनि भी इसकी ओर सिर झुकाकर ही बैठते हैं।

और यह कनूँ है—सारी चंचलताका यही केन्द्र है। विश्वमें सारा-का-सारा नटखटपन इसीकी चंचल अँगुलियोंके संकेतसे आता है। यह जानता ही नहीं कि शान्त कैसे बैठा जाता है। बड़ी-बड़ी उजली दाढ़ीवालोंको भी यह अँगूठा दिखा आता है और इसे चिढ़ानेका जिसका मन न हो, वह तो कोई पुराना खड्डूस ही हो सकता है।

दाऊ और कनूँ—इनमें परस्पर ही क्या कम भेद है। 'दादा! दादा!' कनूँ प्राय: पुकारता ही रहता है। प्राय: उसके पुकारनेका कोई तात्पर्य नहीं होता। वह तो पुकारनेके लिये ही पुकारता है। उसका दादा उसके पास सटकर बैठा हो तो भी मजेमें जोरसे पुकारता है और दाऊ है कि केवल हँस देता है। श्यामके पुकारनेपर कदाचित् ही वह बोलता है। वह कन्हाईकी ओर देखता है और मुसकराता है। मुसकराता है और देखता है।

'कनूँ!' जब कन्हाई देरतक दीख न पड़े, जब संध्याको वनसे गायें लेकर लौटना हो, जब कोई आशंकाकी बात हो, तबकी बात छोड़ दीजिये। केवल ऐसे ही अवसरोंपर दाऊ अपने छोटे भाईको सचमुच पुकारता है। नहीं तो वह केवल सम्बोधन करता है। कन्हाई कितनी दूर बैठा है या खेलनेमें लगा है, यह कुछ नहीं। दाऊ तो धीरे-से कहेगा—'कनूँ!' जैसे उसका कनूँ उससे सटकर ही बैठा है।

श्याम खेलनेमें लगा हो तो माता रोहिणी पुकारते-पुकारते थक जाती है, वह सुनता ही नहीं। मैया यशोदाकी पुकार उसके कानोंमें ही नहीं आती। उस समय वह किसीका बुलाना नहीं सुनता, किंतु अपने बड़े भाईका सम्बोधन सुननेके लिये कन्हाईके कान बड़े तेज हैं। दाऊ दूर बैठा है—पर्याप्त दूर आँगनमें। कनूँ बाहर गलीमें खेल रहा है। 'कनूँ!' कब धीरेसे दाऊने यों ही कह दिया, पास बैठी उसे पुचकारती मैया भी नहीं सुन पाती। वह मुँहमें बोलनेका ही अभ्यासी है।

'कनूँ!' किंतु अपने दादाका यह सम्बोधन खेलनेमें लगा कन्हाई अवश्य सुन लेगा। खिलौने धरे रहें, घरौंदा अधूरा पड़ा रहेगा, गुँथनेको हाथमें लगी हुई मालाके पुष्प मार्गमें बिखर जायँगे, श्याम घरमें हो या वनमें, छोटेसे बड़े होनेतक इसमें कभी अन्तर नहीं पड़ा कि वह दाऊके पुकारते ही दौड़ेगा। हाथमें धूल, खिलौने, पुष्प—जो भी हो, लिये आयेगा—'दादा!' वह आकर बड़े भाईकी ओर ऊपर मुख उठाकर उससे सटकर बैठ जायगा। किसीको कुछ कहना नहीं रहता। दाऊ मुसकरायेगा। कनूँ खिलखिलाकर हँसेगा और दो क्षण उठकर अपने दादाके सामने या चारों ओर घूम-घूमकर कूदेगा, फुदकेगा, नाचेगा।

कनूँ और दाऊ—दोनों अपनेमें एक-जैसे हैं। कोई कनूँके आगे दाऊको कुछ कह तो दे; वह लाठी ही नहीं, पूरा ऊखल उठाकर सिरपर पटक देनेको खड़ा हो जायगा। कहनेवालेकी नाक, कान, चुटिया जो हाथमें आ जाय—बस, उसकी कुशल नहीं समझनी चाहिये।

दाऊके भालपर तनिक-सा स्वेद झलका और श्याम दौड़ा कमलका पत्ता तोड़ने। संसारमें जितनी सुन्दर, स्वादिष्ट और अच्छी वस्तुएँ हैं, सबपर वह

मानता है कि उसके दादाका स्वत्व है। सब उसके दादाके लिये सुरक्षित रहनी चाहिये। दाऊ—जिसके सिरको यमराज अपने घर ले जाना चाहें, वह दाऊके आगे श्यामको कुछ कहनेका साहस करे। कन्हाईका मुँह तनिक झुका और दाऊ घूँसा बाँधता है—किसने तुझे खिझाया है? और दाऊका घूँसा—वह जिसपर पड़ेगा, वह क्या फिर पानी माँगेगा?

'श्याम थक गया है।' 'कनूँ भूखा है।' 'मोहन इस फूलको लेकर प्रसन्न होगा।' 'कन्हाई यहाँ नाचेगा।' दाऊको अपने छोटे भाईको छोड़कर कुछ सूझता ही नहीं। कोई उससे पूछे कि संसारभरमें क्या-क्या है, तो वह सम्भवत: बड़े मजेसे कहेगा 'कन्हाई!' और चुप हो जायगा। बस, जैसे संसारमें उसका कन्हाई-ही-कन्हाई है।

दाऊ और कनूँ—कनूँ और दाऊ। क्या हुआ कि दोनोंके शरीर गौर और श्याम हैं। क्या हुआ कि एक गम्भीर और एक चपल है। हैं दोनों एक ही, सर्वथा एक। गौर श्याम—श्याम गौर।

बोध-कथा—

बहुमतका सत्य

किसी वृक्षपर एक उल्लू बैठा हुआ था। अचानक एक हंस उड़ता हुआ उस वृक्षपर आ बैठा। हंस स्वाभविक रूपमें बोला—'उफ्! कितनी गरमी है। सूर्य आज बहुत प्रचण्ड रूपमें चमक रहे हैं।'

उल्लू बोला—'सूर्य? सूर्य कहाँ है? इस समय गरमी है—यह तो ठीक; किंतु यह गरमी तो अन्धकार बढ़ जानेसे हुआ करती है।'

हंसने समझानेका प्रयत्न किया—'सूर्य आकाशमें रहते हैं। उनका प्रकाश संसारमें फैलता है, तब गरमी बढ़ती है। सूर्यका प्रकाश ही गरमी है।'

उल्लू हँसा—'तुमने प्रकाश नामक एक और नयी वस्तु बतायी। तुम चन्द्रमाकी बात करते तो वह मैं समझ सकता था। देखो, तुम्हें किसीने बहका दिया है। सूर्य या प्रकाश नामकी वस्तुओंकी संसारमें कोई सत्ता ही नहीं है।'

हंसने उल्लूको समझानेका जितना प्रयत्न किया, उल्लूका हठ उतना बढ़ता गया। अन्तमें उल्लूने कहा—'यद्यपि इस समय उड़नेमें मुझे बहुत कष्ट होगा, फिर भी मैं तुम्हारे साथ चलूँगा। चलो, वनके भीतर सघन वृक्षोंके बीच जो भारी वटवृक्ष है, उसपर मेरे सैकड़ों बुद्धिमान् जाति-भाई हैं। उनसे निर्णय करा लो।'

हंसने उल्लूकी बात स्वीकार कर ली। वे दोनों उल्लुओंके समुदायमें पहुँचे। उस उल्लूने कहा—'यह हंस कहता है कि आकाशमें इस समय सूर्य चमक रहा है। उसका प्रकाश संसारमें फैलता है। वह प्रकाश उष्ण होता है।'

सारे उल्लू हँस पड़े, फिर चिल्लाकर बोले—'क्या वाहियात बात है, न सूर्यकी कोई सत्ता है, न प्रकाशकी। इस मूर्ख हंसके साथ तुम तो मूर्ख मत बनो।'

सब उल्लू हंसको मारने झपटे। कुशल इतनी थी कि उस समय दिन था। उल्लुओंको वृक्षोंके अन्धकारसे बाहर कुछ दीख नहीं सकता था। हंसको उड़कर अपनी रक्षा करनेमें कठिनाई नहीं हुई। उसने उड़ते-उड़ते अपने-आपसे कहा—'बहुमत सत्यको असत्य तो कर नहीं सकता, किंतु उल्लुओंका जहाँ बहुमत हो, वहाँ किसी समझदारको सत्यका प्रतिपादन करनेमें सफलता मिलनी कठिन ही है। चाहे वह सत्यका साक्षात्कार कर चुका हो।' [श्री 'चक्र']

गणित-दर्शन

(आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')

भारतीय गणित व्यवहार और परमार्थका बोध करानेवाला एक विशिष्ट दर्शन है। समग्र व्यावहारिक जगत् नाम-रूपात्मक है, जिसमें विस्तार और वैविध्य प्रत्यक्ष सिद्ध है। इस विस्तार और वैविध्यका आकलन करनेवाली बुद्धिका ही नाम संख्या है। संख्याका अर्थ है—'**सम्यक् ख्यायते यया सा**' अर्थात् जिसके द्वारा तत्त्वका सम्यक् रीतिसे 'ख्यान'—परिगणन किया जा सके अथवा कहा जा सके।

संसारमें हमारे समग्र व्यवहार विविधता या अनेकत्वमें ही सम्पन्न होते हैं, किंतु इन सबकी अन्विति जहाँ संगत होती है, वह हमारा स्वत्व या स्वरूप हमें सदा अपरिवर्तित और एकरस ही अनुभूत होता है। वैविध्य या विस्तारको हम अपनी इन्द्रियों और अन्तःकरणके माध्यमसे एक सीमातक ही ग्रहण कर पाते हैं। इस प्रकार जितना हम ग्रहण कर सकते हैं, वही गणित या गणनार्ह बन पाता है, शेष इन्द्रिय और अन्तःकरणकी सीमामें न समानेवाली विविधता और विस्तारको हम अपनी असामर्थ्यके कारण अगणनार्ह या अनन्त मान लेते हैं। इस प्रकार अनन्त शब्द असीमका पर्याय और गणितके सामर्थ्यका पूर्णविराम है। श्रुतिने इसे '**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**' (तैत्तिरीय उपनिषद्)-के रूपमें 'अनन्त' शब्दसे और—

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

(ईशा०उप० आरम्भिक शान्तिपाठ)

इत्यादिके द्वारा 'पूर्ण' शब्दसे भी उपलक्षित किया है। गणितीय दृष्टिसे अनन्तमें गणितकी कोई प्रक्रिया चरितार्थ नहीं होती। न वहाँ कुछ जुड़ता है, न घटता है, न उसका गुणन होता है, न विभाग ही उसमें उत्पन्न हो सकता है अर्थात् अनन्तमें कुछ भी जोड़ा या घटाया जाय, किसी भी संख्यासे गुणा किया जाय या भाग दिया जाय—परिणाम अनन्त ही रहता है। यही बात तत्त्वको पूर्ण शब्दसे उपक्षित करनेवाली पूर्वोद्धृत-श्रुतिसे भी सिद्ध होती है कि पूर्णसे पूर्ण ही उत्पन्न होता है, पूर्णका पूर्ण निकाल लिये जानेपर भी शेष बचनेवाला तत्त्व पूर्ण ही होता है इत्यादि। आशय यह हुआ कि यह अनन्त या पूर्ण तत्त्व ही वस्तुतः अनिर्वाच्य है। श्रुतियोंमें इसीको अनिरुक्त और अनिलयन कहा गया है। इसकी थाह लेनेको प्रवृत्त हुए वाक् एवं मनस्तत्त्व दोनों ही कुछ दूर जाकर लौट आते हैं—

यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह।

(तैत्तिरीय० २।४)

किंतु यह वाणी और मनसे अतीत होनेपर भी 'सत्' है, जिसका हम अपनी 'स्वता' के रूपमें साक्षात् अनुभव करते हैं। भले ही सबका निषेध कर दिया जाय, किंतु निषेधकर्ताके रूपमें जो स्थित है, उसका निषेध नहीं किया जा सकता, इसीलिये उसे 'निषेधशेष' कहा गया है। जो निषेध-शेष, अनुभवैकगम्य आत्मतत्त्व है, वही परमात्मरूप अशेष है—अनन्त है—

'**निषेधशेषो जयतादशेषः**' (श्रीमद्भा० ८।३।२४)

'अशेष'के रूपमें वह सत् होते हुए भी सामान्य प्रमाताके लिये अगम्य अथ च, अव्यवहार्य है; इसीलिये भारतीय गणितमें अनन्तका कोई चिह्न (अंक) प्राप्त नहीं होता। हाँ, उसका अपररूप आत्मा अनुभवैकगम्य और श्रुतिके वचनानुसार '**एकमेवाद्वितीयम्**' (छान्दोग्य० ६।२।१) है, इसलिये व्यक्त गणितमें इसे एक (१) अंकद्वारा सूचित किया गया है। यह सारे व्यवहारका मूलाधार परमार्थतत्त्व है। सृष्टिके समग्र विस्तारमें एककी अन्विति है, दूसरे शब्दोंमें कहीं तो गणितकी दोसे लेकर द्विपरार्धतककी सभी संख्याएँ इस एकके ही विविध प्रस्तारमात्र हैं। आध्यत्मिक दृष्टिसे स्वरूपकी अन्वितिके बिना सम्पूर्ण प्रपंच सत्ताहीन हो जाता है।

अनन्त पूर्ण या अशेषका दूसरा छोर है—शून्य। यह प्रातिभासिक सत्ता है। तात्त्विक दृष्टिसे यह मायाका प्रतीक है। माया औपनिषद्-दर्शन अर्थात् केवलाद्वैत-वेदान्तकी दृष्टिसे सत् और असत् दोनों होते हुए भी दोनों

नहीं हैं। अर्थात् सद्सद्विलक्षणा है। यदि यह ब्रह्मबोधरूपी अंकके दाहिने अर्थात् अनुकूल हो तो यह अस्तित्ववती और ब्रह्मकी विविध विभूतियोंको उपलक्षित करनेवाली बन जाती है, किंतु ब्राह्मबोधके बिना या इसकी वाम-दिशामें अर्थात् प्रतिकूल होनेपर असत् और महत्त्वहीन बन जाती है। गणितीय शून्य (०)-का स्वरूप भी ऐसा ही है। यदि यह एक या उसके विवर्तरूप किसी भी अंकके दाहिने हो, तो उसका मान होता है और शून्योंके बढ़ाते जानेपर अंकका महत्त्व बढ़ता जाता है, अन्यथा स्वतन्त्र रूपसे एक शून्य या बहुत-से शून्योंका भी कोई मान नहीं होता। इसी बातको गोस्वामी तुलसीदासजीने भी कहा है—

अंक राम को नाम है, सब साधन है सून।
अंक गए सब सून है, अंक रहे दस गून॥

(दोहावली)

अब **'बहुस्यां प्रजायेय'** (तैत्तिरीय० २।६) इस श्रुत्युक्त बहुभवनके सिद्धान्तानुसार दो (२)-से लेकर नव (९)-तककी संख्याएँ इस एकके ही विविध विवर्त हैं। इनमें आठ (८)-की संख्या प्रातिभासिकतामें माया कही जानेवाली अष्टधा प्रकृतिकी प्रतीक है। अष्टधा प्रकृतिको श्रीमद्भगवद्गीतामें इस प्रकार परिभाषित किया गया है—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

(७।४)

अर्थात् श्रीभगवान् कहते हैं—'हे अर्जुन! पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशरूप पंचमहाभूत तथा मन, बुद्धि और अहंकार—यह आठ प्रकारोंमें मेरी प्रकृति विभक्त है।' प्रकृति और उसका प्रस्तार उच्चावचशाली अथ च, विषम है। इसमें निर्गुण ब्रह्मरूप एक (१)-को जोड़ देनेसे नव (९) संख्यासे अभिव्यक्त सगुण-साकार ईश्वर या भगवत्तत्त्वकी सिद्धि हो जाती है, अर्थात् नव (९)-का अंक सगुणब्रह्म या भगवत्तत्त्वका प्रतीक है। नवका अर्थ है—'जो सदा नवीन और एकरस रहे—उसमें वैषम्य या विकृति न आये, सगुण भगवत्स्वरूपोंकी नित्यनवीनताका रहस्य है'—**'वन्दे नवघनश्यामं स्वात्मारामं मनोहरम्।'** (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

श्रीमद्भगवद्गीताने ब्रह्मका लक्षण करते हुए उसे निर्दोष और सम कहा है—**'निर्दोषं हि समं ब्रह्म'** (५।१९) इसलिये प्रकृतिके प्रस्तारमें जहाँ उच्चावचता (घटना-बढ़ना) और वैषम्य है, वहीं ब्रह्म या ब्राह्मी-वृत्तिका प्रस्तार सदा नव-नवायमान होनेपर भी एकरस है। गोस्वामी तुलसीदासजीने गणित-दर्शनके इस रहस्यको भी—

जैसे घटत न अंक नौ, नौ के लिखत पहारु।

—कहकर निरूपित किया है। अर्थात् यदि नव (९) संख्याका पहाड़ा लिखते हुए एकसे लेकर दसके क्रममें क्रमशः प्राप्त संख्याओंमें, प्रत्येकके इकाई और दहाई स्थित अंकोंको परस्पर जोड़ते जाया जाय तो प्रत्येकका योग नव (९) ही होगा यथा—

९	×	१	=	०९	में	०	+	९	=	९
९	×	२	=	१८	में	१	+	८	=	९
९	×	३	=	२७	में	२	+	७	=	९
९	×	४	=	३६	में	३	+	६	=	९
९	×	५	=	४५	में	४	+	५	=	९
९	×	६	=	५४	में	५	+	४	=	९
९	×	७	=	६३	में	६	+	३	=	९
९	×	८	=	७२	में	७	+	२	=	९
९	×	९	=	८१	में	८	+	१	=	९
९	×	१०	=	९०	में	९	+	०	=	९

जबकि माया या प्रकृतिके सूचक अंक आठ (८)-के साथ यह स्थिति संघटित नहीं होती, वहाँ घटना-बढ़ना दोनों दिखलायी पड़ते हैं, यथा—

८	×	१	=	०८	में	०	+	८	=	८
८	×	२	=	१६	में	१	+	६	=	७
८	×	३	=	२४	में	२	+	४	=	६
८	×	४	=	३२	में	३	+	२	=	५
८	×	५	=	४०	में	४	+	०	=	४
८	×	६	=	४८	में	८	+	४	=	१२
८	×	७	=	५६	में	५	+	६	=	११

८ × ८ = ६४	में	६ + ४ = १०
८ × ९ = ७२	में	७ + २ = ०९
८ ×१० = ८०	में	८ + ० = ०८

इस प्रकार नव (९)-का अंक प्रकृति-सापेक्ष सगुण-ब्रह्म या ईश्वरकी तुरीयावस्था और आठ (८)-का अंक प्रकृतिका अभिव्यंजक है। इस सगुणब्रह्मको अपने मूलस्वरूप अर्थात् निर्गुणब्रह्मसे युक्त कर देनेपर अर्थात् नव (९)-में एकको जोड़ देनेपर दश (१०) संख्याकी प्राप्ति होती है, जो दो संख्याओंका प्रथम पूर्णांक है। यह माया-सबल ब्रह्मकी सुषुप्ति-अवस्था और उसके विभु प्राज्ञका अभिव्यंजन कराता है। यह प्राज्ञ ही व्यष्ट्यविद्याऽवच्छिन्न जीवतत्त्व है। इसीमें पुनः मायाके प्रस्तार अर्थात् एक शून्यका योग हो जानेपर शत संख्याकी उत्पत्ति होती है। यह माया-शबल-ब्रह्मकी तृतीयावस्था (स्वप्नावस्था) और उसके विभु—'तैजस' का प्रतीक है। शास्त्रीय दृष्टिसे यही 'हिरण्यगर्भ' या प्रजापति परमेष्ठी ब्रह्मा है। इसके आगे मायाका एक प्रस्तार अर्थात् शून्य (०) जब और भी जुड़ता है, तब यह सहस्र (१०००)-की संख्या, माया-शबल ब्रह्मकी व्युत्क्रम (उलटे क्रम)-से चतुर्थ विभूति अर्थात् जाग्रदवस्था और उसके विभु विश्व या वैश्वानरका उपलक्षण कराती है। यही विराट्तत्त्व या विराट्पुरुष है। इसीलिये भगवती श्रुतिने विराट्पुरुषका निरूपण करते हुए उसके शिर, नेत्र, चरणादि अवयवोंकी कल्पनामें सहस्र-संख्याका ही प्रयोग किया है—

स॒हस्र॑शीर्षा॒ पुरु॑षः सहस्रा॒क्षः स॒हस्र॑पात्।
स भूमिं॑ वि॒श्वतो॑ वृ॒त्वात्य॑तिष्ठद्द॒शाङ्गु॒लम्॥

(ऋक्-संहिता १०।९०।१ पुरुषसूक्त मन्त्र १)

सहस्र ही उस परमतत्त्वकी गणितीय दृष्टिसे मूल विभूति है, इसीलिये विविध देवी-देवताओंके रूपमें उपास्य विभूतिमद् ब्रह्मकी स्तुतियाँ सहस्रनाम-स्तोत्रोंसे की गयी हैं। इसके आगेकी अयुत (दश-सहस्र) लक्ष, (शतसहस्र), दक्षलक्ष, कोटि आदिसे लेकर द्विपरार्धतककी संख्या और संख्येयरूप विभूतियाँ इस दश, शत और सहस्ररूप—त्रिकके ही विविध गुणनफल हैं। इसलिये पुराणोंमें सहस्रमुख शेषनागको अनन्त भी कहा गया है। पौराणिक-उपासनामें भगवान् शेषशायीके सम्प्रत्ययका यही रहस्य है। शेष सहस्रमुख हैं और वे महाविष्णुसे अभिन्न होनेपर भी उनकी शय्या बनते हैं। किंतु द्विपरार्धावसानमें अर्थात् गणितकी सीमा समाप्त हो जानेपर शेष और शेषी (या अशेष)—दोनोंका औपाधिक भेद मिट जाता है, दोनों समीकृत होकर पुनः एकरूपमें परिणत हो जाते हैं। उन्हें शेष कहिये या अशेष—कोई अन्तर नहीं रह जाता—

नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने भवानेकः शिष्यते शेषसञ्ज्ञः।

(श्रीमद्भा० १०।३।२५)

मायाकी समस्त दिक्कालादिरूप विभूतियोंका अतिक्रमण कर लेनेपर पुनः उसी प्रकार एककी ही प्राप्ति हो जाती है, जिस प्रकार बीजसे अंकुरित वृक्षके समस्त विस्तार-प्रस्तारके साररूपमें पुनः बीजत्व ही उपलब्ध होता है। अतः समग्र आध्यात्मिक साधनाओंकी कृतकार्यता एक कर्तृरूपसे चलकर पुनः समग्र विभूतियोंके निःस्यन्दभूत एक अर्थात् आत्मतत्त्वको प्राप्त कर लेनेमें ही है।

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत॥
कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

हे राजन्! यह कलियुग यद्यपि सब प्रकारसे दोषमय है, फिर भी इसमें यह एक महान् गुण है कि केवल कृष्णके कीर्तन करनेसे ही मनुष्य निःसंग होकर परमपदपर पहुँच जाता है। सत्ययुगमें जो फल श्रीविष्णुभगवान्के ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञादिसे और द्वापरमें हरिसेवासे प्राप्त होता है, कलियुगमें वह केवल हरि-नाम-संकीर्तन करनेसे ही मिल जाता है। [**श्रीमद्भागवत**]

शिवका निवास—कैलास

(श्रीओमप्रकाशजी श्रीवास्तव, आई०ए०एस०)

भारत सदैवसे विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायोंका मिलन-स्थल रहा है। वैष्णव, शाक्त, शैव आदि मतोंमें प्रधान देवता भले ही अलग-अलग हों, परंतु यह सभी एक ही मन्दिरमें अलग-अलग कोनोंमें विराजमान देखे जा सकते हैं। श्रद्धालु एक साथ सभीकी पूजा-अर्चना करते हैं, एक ही लोटेसे सबको जल चढ़ाते हैं और एक ही थालीके चन्दनसे सबको टीका लगाते हैं। सामान्यत: मन्दिरोंमें इन सबके बीच शिवलिंग विराजमान रहते हैं, जैसे वह विविधतापूर्ण मतों और विचारोंका मिलन-स्थल हों। देशभरमें अलग-अलग स्थानोंपर विभिन्न देवताओंके मुख्य धाम या मन्दिर हैं। हर स्थानका अपना आध्यात्मिक और ऐतिहासिक महत्त्व है। परंतु श्रद्धा और विश्वासकी बात करें तो भारत-भूमिका कंकड़-कंकड़ शंकर है। हर दो-चार कोसपर और कुछ मिले या न मिले शिवालय तो मिल ही जाता है। शिवके धाम चारों ओर हैं। बारह ज्योतिर्लिंग तो सारे देशको एकताके सूत्रमें आबद्ध किये हैं। इन तीर्थोंके अलावा एक महातीर्थ है और वह है कैलास। शिवका निवास-स्थान। भारतीय जनमानसमें रचा-बसा ऐसा तीर्थ, जिसकी यात्रा करना हर श्रद्धालुका सपना होता है। ऐसा क्या है कैलासमें? क्यों विश्वके तीन प्रमुख धर्मों हिन्दू, बौद्ध, जैन और तिब्बतके स्थानीय धर्म 'बान-पा'का यह महातीर्थ है? वह कौन-सा आकर्षण है, जिसके कारण विश्वके सर्वाधिक दुर्गम तीर्थपर संसारभरसे श्रद्धालु दौड़े चले आते हैं? क्या यही सुमेरु पर्वत है? क्या यह संसारकी धुरी है? क्या यह संसारकी आध्यात्मिकताका केन्द्र है? इन आस्थाओंके पीछे आधार क्या है? वैसे तो यह सब अनुभूतिके विषय हैं, परंतु कुछ वैज्ञानिक तथ्यों तथा पौराणिक उद्धरणोंके माध्यमसे इन प्रश्नोंका उत्तर खोजनेका प्रयास इस अध्यायमें किया गया है।

भूगर्भीय रहस्य—भौगोलिक रूपसे कैलास-पर्वतमाला कश्मीरसे भूटानतक फैली हुई है। हिमालयके उत्तरमें स्थित तिब्बतमें कैलास-पर्वतमालाके बर्फसे आच्छादित २२,०२८ फीट ऊँचे उत्तरी शिखरको कैलास कहते हैं। ऐसा माना जाता है कि प्राचीन साहित्यमें उल्लिखित मेरु या सुमेरु पर्वत भी यही है। इसके चारों ओरके पर्वत षोडशदल कमलकी आकृति बनाते हैं, जिनके मध्य यह शोभायमान है। इसकी आकृति विराट् शिवलिंगकी तरह है। यह सदैव हिमाच्छादित रहता है। इसके पास ही मानसरोवर झील तथा राक्षसताल या रावणह्रद है। इस पूरे प्रदेशको मानसखण्ड कहा गया है।

भूवैज्ञानिकोंका मानना है कि आजसे १८ करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी आजकी तरह नहीं थी। उस समय भारतीय प्रायद्वीपका अस्तित्व नहीं था। तब यूरेशिया और विशाल गोंडवाना महाद्वीप अलग-अलग थे और इनके बीचमें टेथिस सागर फैला था। १३ करोड़ वर्ष पूर्व गोंडवानालैण्डका उत्तरका भाग टूटकर अलग हुआ (जिससे बादमें भारत तथा ऑस्ट्रेलियाका निर्माण हुआ) और टेथिससागरसे होता हुआ १५ सेमी प्रतिवर्षकी गतिसे उत्तरकी ओर बढ़ा। ५ करोड़ वर्ष पूर्व यह यूरेशियासे टकराया। इन दोनों प्लेटोंके पास आनेसे भूगर्भीय दबाव बढ़ता गया इससे समुद्री तलछटसे कई विवर्तनिक उभार, गड्ढे और अन्तर्ग्रन्थित भ्रंशोंका जन्म हुआ। भूगर्भमें दबे ग्रेनाइट और बेसाल्टके भण्डार कमजोर हो चुकी सतहसे ऊपर निकल आये। दबावकी यह प्रक्रिया सतत चलती रही। अगले ३ करोड़ वर्षोंमें टेथिस सागरका तल ऊपर उठ गया और इससे तिब्बतके पठारका निर्माण हुआ। दबाव तथा प्रति दबावकी प्रक्रियाके कारण प्राचीन गोंडवानालैण्डकी रूपान्तरित चट्टानें भूगर्भसे निकलकर लम्बी क्षैतिज दूरीतक परत-दर-परत जमती गयीं। यह परत क्रमश: ऊपर उठती गयी और इस प्रकार लगभग ५ से ६ करोड़ वर्ष पहले हिमालयका जन्म हुआ। पृथ्वीके इतिहासमें हिमालय अभी अपनी बाल्यावस्थामें है और इसका निरन्तर विकास हो रहा है। हिमालयके कारण हुए जलवायवीय अवरोधके कारण तिब्बत वर्षासे वंचित होकर ठण्डे

मरुस्थलमें बदल गया।

तिब्बतके मानसखण्डमें कैलासका उद्भव भूवैज्ञानिक दृष्टिसे भी अद्भुत है। यदि यह भूगर्भीय दबावके कारण उद्भूत हुआ, जैसा कि हिमालय हुआ है, तो यह भी परत-दर-परत चट्टानोंसे बना होता। इसके विपरीत यह एकाश्म (Monolithic) है अर्थात् एक ही पत्थरका बना है। कैलासका शिखर और उसका उत्तरी पार्श्व कांग्लोमोरेट पत्थरका बना है, जबकि पश्चिमी और दक्षिणी भाग ग्रेनाइटका है। इसका जन्म भी हिमालयके साथ ही ५ से ६ करोड़ वर्ष पहले हुआ। यह समुद्र-तलसे २२,०८८ फीट ऊँचा है। यह अपने तलमें तरछी चट्टानोंसे घिरा है, फिर भी इसका स्ट्रेटा क्षैतिज रूपसे अक्षुण्ण है। कैलास जिस धरतीपर खड़ा है, उससे इसका रंग पूर्णत: भिन्न है। कैलास एकाश्म है जबकि उसके चारों ओरकी पर्वत श्रेणियाँ कच्चे लाल मटमैले पत्थरोंकी बनी हैं। भूगर्भशास्त्रियोंके अनुसार मानसखण्डका क्षेत्र यूरेशियाके दक्षिणी भागमें स्थित था। इसी किनारेपर गोंडवानालैण्डकी प्लेट टकरायी थी। इस प्रकार दो बातें स्पष्ट होती हैं—प्रथम तो यह कि मानसखण्ड भूगर्भीय रूपसे यूरेशियाका भाग रहा है जबकि भारत उपमहाद्वीप गोंडवानालैण्डका भाग था और दूसरा यह कि यह दो महाद्वीपोंके मिलन-बिन्दु अर्थात् Centre of Creation पर स्थित है। इसके २० मील दूर २५,२४३ फीट ऊँचा गुरला मान्धाता पर्वत दोनों महाद्वीपोंके मिलन-बिन्दुके दक्षिणमें है और स्पष्ट रूपसे हिमालयका ही अंग है, जो गोंडवानालैण्डका हिस्सा था।

इस प्रकार कैलासका उद्भव भूगर्भके ज्ञात सिद्धान्तोंसे स्पष्ट नहीं हो पाता है। अब हम पौराणिक आख्यानोंपर विचार करें। हमारे प्राचीन धर्मग्रन्थ श्रुति और स्मृति परम्परापर आधारित हैं और अत्यन्त प्राचीन मानव-स्मृतियाँ सँजोये हुए हैं। इनके अनुसार कैलास पर्वतको प्राकृतिकरूपसे समृद्ध और हरे-भरे क्षेत्रमें बताया गया है। अलकापुरी नामक अत्यन्त सुन्दर नगरी भी इसके समीप स्थित है। कैलासपर विशाल वटवृक्ष है, जिसके नीचे शिव तपस्यामें लीन रहते हैं। मानसरोवरके जलमें नीलकमल खिलते हैं और राजहंस विचरण करते हैं। मानसरोवरके बीचमें जम्बू-वृक्ष है। कहीं यह वर्णन भूगर्भीय परिवर्तनोंके पूर्वका तो नहीं है, जब मानस-खण्ड यूरेशियाका भाग हुआ करता था और उससे गोंडवानालैण्डकी टूटी प्लेट टकरायी नहीं थी? यह कपोल कल्पनाका विषय नहीं है। हाँ, इतना स्पष्ट है कि अभीतककी भू-वैज्ञानिक खोजें कैलासकी उत्पत्तिका ठोस कारण नहीं बता पायी हैं। परम्परासे कैलासको स्वयम्भू पर्वत माना जाता है। धार्मिक दृष्टिसे देखें तो इसकी उत्पत्तिका कोई कारण हो भी नहीं सकता, क्योंकि शिव स्वयम्भू हैं। वे इस सृष्टिके आधार हैं। उनकी इच्छासे सृष्टि सृजित होती है, पोषित होती है और विनष्ट हो जाती है। इस इच्छाके पीछे कोई कारण नहीं है। शिव आधाररहित तथा बिना कारणके प्रकट होते हैं। इसी प्रकार कैलास भी स्वयम्भू तथा बगैर कारणके उद्भूत हुआ है।

क्या यही सुमेरु पर्वत है—पौराणिक ग्रन्थोंमें सुमेरु पर्वतका अनेक जगह उल्लेख आया है। उसे पृथ्वीकी धुरी भी माना जाता है। वह पृथ्वी तथा स्वर्गको जोड़ता है। अन्य स्थानोंका वर्णन करनेमें सुमेरुको सन्दर्भ बिन्दुके रूपमें लिया जाता था। महाभारतमें मेरु और कैलास पृथक्-पृथक् वर्णित हैं, परंतु उत्तरवर्ती पुराणोंमें दोनों एक ही अर्थमें प्रयुक्त हुए हैं। सुमेरु और कैलासमें कई समानताएँ हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्वका सुमेरु ही बादमें कैलास नामसे प्रसिद्ध हो गया। लिखित साहित्यसे पता चलता है कि लगभग २००० वर्ष पूर्व सुमेरु और कैलास पर्यायवाचीके रूपमें प्रयुक्त होने लगे थे। विष्णुपुराणमें सुमेरुकी स्थिति बताते हुए कहा गया है कि उसके दक्षिणमें भारतवर्ष, फिर किंपुरुषवर्ष तथा अन्तमें हरिवर्ष है। उसके पूर्वमें मन्दर, दक्षिणमें गन्धमादन, पश्चिममें विपुल और उत्तरमें सुपार्श्व पर्वत हैं। लिंगपुराणके अनुसार मेरुके चारों ओर चार झीलें—पूर्वमें अरुणोदय, उत्तरमें महाभद्र, पश्चिममें सितोद तथा दक्षिणमें मानस हैं। यदि पौराणिक भूगोलपर विश्वास किया जाय तो सुमेरुकी स्थिति वर्तमान कैलासके उत्तर या थोड़े उत्तर-पश्चिममें आती है। स्कन्दपुराणमें कहा गया है कि मानसरोवरके उत्तरमें कैलास है। वहाँ

३,३०० गुफाएँ हैं, जिनका प्रच्छालन मानसकी लहरें करती हैं। कैलासकी आन्तरिक परिक्रमा कैलासके तलकी गुफाओंसे होकर ही की जाती है। मानसमें आनेवाला पानी भी एक रहस्य है; क्योंकि कैलाससे निकलनेवाले जलस्रोत राक्षसताल और सतलजमें तो जाते हैं, मानसमें नहीं। इसलिये ऐसा माना जाता है कि मानसमें जलके भूमिगत स्रोत हैं, जो कैलासके तलतक फैले हैं। इन जलस्रोतोंका जल कैलासकी गुफाओंतक जाता हो तो इसमें आश्चर्य नहीं है। इस आधारपर भी पुराणोंका मेरु वर्तमानका कैलास ही होता है।

पुराणोंमें मेरुके वर्णनमें उसके ढालोंके स्वर्णिम तथा रत्नखचित होनेका उल्लेख है। तिब्बतके बान-पा धर्ममें भी ऐसा ही माना जाता है। तिब्बती कैलासके दक्षिणी पार्श्वको नीलम, पूर्वीको क्रिस्टल (स्फटिक), पश्चिमीको माणिक्य (रूबी) और उत्तरीको स्वर्णमण्डित मानते हैं। कैलासपर जब उगते और अस्त होते सूर्यकी रश्मियाँ पड़ती हैं तो यह स्वर्णिम हो जाता है, दोपहरके सूर्यके समय स्फटिककी तरह चमकता है और रातकी चाँदनीमें मोतियोंसे आवेष्टित प्रतीत होता है। इसे देखकर ही पुराणों तथा प्राचीन साहित्यमें इसे स्वर्णिम और रत्नखचित माना गया है। विष्णुपुराणमें वर्णन है कि कैलासके चारों दिशाओंके ४ मुख स्फटिक, माणिक, स्वर्ण और लाजवर्त (Lapis Lazuli)-से बने हैं। इस प्रकार भी आजका कैलास ही प्राचीन मेरु या सुमेरु सिद्ध होता है।

मेरु पृथ्वीको स्वर्गसे, नित्यको अनित्यसे जोड़ता है। बौद्ध तथा जैन भी ऐसा ही मानते हैं। हमारे शरीरका मेरुदण्ड भी मूलाधारको सहस्रारसे जोड़ता है, सारे शरीरको स्थिरता देता है। हिन्दुओंकी जप करनेकी मालामें प्रथम मनका बड़ा होता है, इसे सुमेरु कहते हैं। माला फेरते समय इस मनकेको लाँघते नहीं हैं। सुमेरु अर्थात् कैलास भी अलंघ्य है। सम्भवत: इसी भावनासे मालाके सुमेरुको न लाँघकर उसे सम्मान देनेकी प्रथा आयी होगी।

कैलासका स्वरूप—कैलासकी आकृति विराट् शिवलिंग-जैसी है। कैलासके चतुर्दिक् ६ पर्वत-श्रेणियाँ हैं, जिनके १६ शिखर षोडशदल कमलकी आकृति बनाते हैं। ये कमलाकार शृंगवाले पर्वत विराट् शिवलिंगके लिये अर्घा बनाते जान पड़ते हैं। ऐसे १४ पर्वत-शृंग तो साफ गिने जा सकते हैं, परंतु सम्मुखके दो शृंग झुककर लम्बे हो गये हैं। इस कमलवत् आकृतिके बीचमें कैलास स्थित है। कुछ लोग इन शृंगोंकी इस प्रकार व्याख्या करते हैं जैसे कैलासके चारों ओर शिवके गण उनकी पहरेदारीमें तैनात हों। अब तो कैलासके वायुयानसे तथा उपग्रहोंसे लिये गये चित्र उपलब्ध हैं। इनकी एक झलक हमें काठगोदामके पहले लोक-संस्कृति संग्रहालय, गीताधाम, भीमताल (नैनीताल)-में देखनेको मिली। इन चित्रोंमें कैलासकी चोटी और उसका क्षैतिज विस्तार दिखायी देता है। चोटीके नीचे काला हिमरहित भाग शिवकी नील ग्रीवा-जैसा दिखता है। क्षैतिज विस्तारमें कहीं-कहीं जमी बर्फ तथा बीच-बीचमें दिख रहे काले पत्थरकी पट्टियाँ मृगछालाका आभास देती हैं। चोटीसे बह रहे जलस्रोत शिवकी जटाओंसे बहनेवाली गंगाका दृश्य उपस्थित करते हैं। कुल मिलाकर ऐसा लगता है जैसे शिव पद्मासनमें बैठे हैं और उनकी मृगछाला चारों ओर फैली है।

शिवका एक नाम पंचानन अर्थात् पाँच मुखवाले भी है। वे पाँचों प्राकृतिक तत्त्वों—पृथ्वी, जल, अग्नि, गगन और वायुके स्वामी हैं। कैलासपर्वतके भी पाँच पार्श्व माने जाते हैं। ये शिवके एक-एक मुखका प्रतिनिधित्व करते हैं। कैलासका दक्षिणी पार्श्व जलतत्त्व, पश्चिमी पार्श्व वायुतत्त्व, उत्तरी पार्श्व आकाशतत्त्व, पूर्वी भाग अग्नितत्त्व और दक्षिणी-पश्चिमी भाग पृथ्वीतत्त्वसे सम्बन्धित माना जाता है।

नदियाँ—कैलासको तिब्बती भाषामें तिसे (Tise) पर्वत कहते हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ है जलशिखर या नदियोंका शिखर। कैलासक्षेत्रसे निकलनेवाली नदियाँ विश्वकी २० प्रतिशत आबादीका पोषण करती हैं। मानसखण्ड, लगभग ७० किमी त्रिज्याके वृत्तमें फैला है। इतने छोटेसे क्षेत्रसे इस उपमहाद्वीपकी चार प्रमुख नदियाँ—सिन्धु, ब्रह्मपुत्र, सतलज और करनाली निकलती हैं। इनमें सिन्धु तथा ब्रह्मपुत्रकी गणना तो

विश्वकी सबसे बड़ी नदियोंमें होती है। सिन्धु जिसे तिब्बतमें ल्हा-छू कहते हैं, कैलासके उत्तर-पूर्वसे निकलती है और पश्चिमकी ओर प्रवाहित होकर लद्दाखमें प्रवेश करती है और फिर उत्तरी पाकिस्तानसे होती हुई अरब सागरमें मिल जाती है। सतलज कैलासके दक्षिण-पश्चिमसे निकलती है और पश्चिमकी ओर बहती हुई हिमाचल प्रदेशसे होती हुई सिन्धु नदीमें मिल जाती है। करनाली कैलासके दक्षिणसे उद्भूत होती है। वहाँसे दक्षिण दिशामें चलती हुई नेपालसे होकर भारतमें प्रवेश करती है तथा घाघरा कहलाती है, फिर आगे चलकर सरयू बन जाती है, जो अयोध्यासे बहती हुई और आगे गंगाके तन्त्रमें मिल जाती है। ब्रह्मपुत्र, जिसे तिब्बतमें छंग-पो या सम्पो कहते हैं, मानसरोवरके दक्षिण-पूर्वके पर्वतोंसे निकलती है, पूर्वकी ओर प्रवाहित होती हुई तिब्बतको पार करती है तथा हिमालयके पूर्वी किनारेसे होते हुए अरुणाचल प्रदेश तथा असमको पार करती हुई गंगामें मिल जाती है और आगे जाकर बंगालकी खाड़ीमें गिरती है।

तिब्बती परम्परामें माना जाता है कि कैलासके पूर्वसे अश्वमुख या तमचोग खम्बब्से ब्रह्मपुत्र, पश्चिमसे हस्तीमुख या लंचेन खम्बब्से सतलज (शतद्रु), दक्षिणसे मयूरमुख या मप्चा खम्बब्से करनाली और उत्तरसे सिंहमुख या सिंगी खम्बब्से सिन्धु नदी निकली है। यहाँकी नदियोंके उद्गमको निश्चित करनेमें सदैव विवाद रहा है; क्योंकि प्रारम्भमें नदियाँ अत्यन्त क्षीण जलधाराके रूपमें बहती हैं। इसके अलावा इनमें भूमिगत चैनल्ससे भी जल प्रवाहित होता है। इसलिये थोड़ा-बहुत दिशाभ्रमको छोड़ दें तो यह निश्चित है कि यह चारों नदियाँ कैलासके चारों ओरसे निकलती हैं एवं एशिया महाद्वीपके बड़े भागका पालन-पोषण करती हैं। सतलज एकमात्र नदी है, जो राक्षसताल तथा मानसरोवरका जल लेकर बहती है।

क्या कैलास विश्वकी आध्यात्मिकताका केन्द्र है?—आध्यात्मिक शक्तियोंका कोई मापदण्ड नहीं होता। यह अनुभूतिकी बात है और इस अनुभूतिके लिये आन्तरिक पात्रताकी आवश्यकता होती है। तब कैसे सिद्ध किया जाय कि कैलास वास्तवमें आध्यात्मिकताका केन्द्र है? हम आध्यात्मिकता भले ही न माप सकें, परंतु भौतिकताकी मापमें तो कोई विवाद नहीं हो सकता और निर्विवादरूपसे पृथ्वीपर भौतिकताके केन्द्रके रूपमें अमेरिकी महाद्वीपका नाम लिया जा सकता है। कैलासकी स्थिति ३१.०६ डिग्री उत्तरी अक्षांश तथा ८१.३३ डिग्री पूर्वी देशान्तरपर है। यह माना जाता है कि पुराणोंमें वर्णित मेरु पर्वत ही वर्तमान कैलास है, जो विश्वकी धुरी है। यदि इस धुरीके एक सिरेपर कैलासको मानें तो इसका दूसरा सिरा ३१.०६ डिग्री दक्षिणी अक्षांश तथा ८१.३१ डिग्री पश्चिमी देशान्तरपर निकलेगा। यह बिन्दु दक्षिणी अमेरिकामें चिलीके पास समुद्रमें आता है। पूरी सृष्टि ही अच्छी और बुरी, दैवीय और आसुरी, आध्यात्मिक और भौतिक शक्तियोंके बीच संघर्ष और सन्तुलनकी धुरीपर संचालित होती है। इस धुरीका एक छोर सकारात्मक लक्षणोंसे युक्त है तो दूसरा नकारात्मक। निर्विवाद रूपसे अमेरिकी महाद्वीप सांसारिकता, उपभोक्तावाद और भौतिकवादका केन्द्र है, तब इसके विपरीत सिरे कैलासके आध्यात्मिक शक्तियोंका केन्द्र होनेमें कोई संशय नहीं रहता।

कैलास ८१.३१ डिग्री पूर्वी देशान्तरपर स्थित है। दो अन्य प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंग भी लगभग इसी रेखापर पड़ते हैं। बाबा विश्वनाथकी काशी वाराणसी २५.२८ डिग्री उत्तरी अक्षांश तथा ८२.९५ डिग्री पूर्वी देशान्तरपर स्थित है। सुदूर दक्षिणमें रामेश्वरम्की स्थिति ०९.२८ डिग्री उत्तरी अक्षांश एवं ७९.३० डिग्री पूर्वी देशान्तर है। इस प्रकार कैलास, काशी विश्वनाथ तथा रामेश्वरम् लगभग एक ही सीधी रेखामें स्थित हैं। भारत ०८.४० डिग्री (दक्षिणी छोर)-से ३७.०६ डिग्री (उत्तरी छोर) उत्तरी अक्षांश और ६८.७० डिग्री (पश्चिमी छोर)-से ९७.२५ डिग्री (पूर्वी छोर) पूर्वी देशान्तरके बीच स्थित है। भारतके लगभग मध्यसे पूर्व-पश्चिम होकर कर्क रेखा निकलती है, जिसकी स्थिति २३.२६ डिग्री उत्तरी अक्षांश है। भारतको पूर्व और पश्चिम दो समान भागोंमें विभाजित करनेवाली उत्तर-दक्षिण होकर निकलनेवाली रेखा ८२.५० डिग्री पूर्वी देशान्तर रेखा है। यहाँ ध्यान देनेकी बात है कि कैलास (८१.३१ डिग्री), काशी

विश्वनाथ (८२.९५ डिग्री) तथा रामेश्वरम् (७९.३० डिग्री) इसी रेखाके आस-पास हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह शिवरेखा है, जो भारतके ब्रह्मान्ध्रपर कैलासके रूपमें, हृदयमें विश्वनाथके रूपमें और पाद-स्थलपर रामेश्वरम्के रूपमें शिवको स्थापितकर भारतको एकताके सूत्रमें बाँध रही है। इस शिवरेखाका शीर्ष कैलास आध्यात्मिक ऊर्जाका शीर्षकेन्द्र होगा ही।

तिब्बती धर्मग्रन्थोंमें कैलास और मानसखण्डको पवित्र तथा आध्यात्मिक शक्तिसे सम्पन्न माना गया है। इनकी तुलना योग-विज्ञानके तत्त्वोंसे की गयी है। जैसे कैलासके पश्चिमकी ल्हा-छू (सिन्धु), पूर्व होकर बहनेवाली झोंग-झू और दोनोंके बीच होकर बहनेवाली तरछेन-छू नदियोंको केंग्मा (इड़ा), रेंग्मा (पिंगला) और उमा (सुषुम्णा) नाड़ियों तथा कैलासको सहस्रार-चक्रकी संज्ञा दी गयी है।

हिन्दू, बौद्ध, जैन तथा बान-पा धर्म अपनी आध्यात्मिक ऊर्जा कैलाससे प्राप्त करते हैं। कैलास-मानसरोवरके बिना तो हिन्दुओंके धार्मिक ग्रन्थोंकी कथा पूरी ही नहीं हो सकती। सृष्टिके सृजक, पालक और संहारक शिवका निवास ही कैलास है। बौद्ध धर्म तिब्बतमें तभी स्थायित्व पा सका, जब मिलारेपाने बान-पा गुरु नारी-बोन-चुंगसे आध्यात्मिक युद्धमें कैलासका आधिपत्य छीन लिया। कैलासकी जिस असीम आध्यात्मिक ऊर्जासे बान-पा धर्म फल-फूल रहा था, वह ऊर्जा बौद्ध धर्मको मिलते ही बौद्ध धर्म सारे संसारमें फैल गया और बान-पा धर्म उसी ऊर्जाके अभावमें अपने जन्म-स्थानसे ही विलुप्त होनेकी कगारपर पहुँच गया। तीर्थ-यात्रियोंको कैलासके दर्शनसे आन्तरिक आनन्द मिलता है, सहज ही समाधिकी अनुभूति होती है, उनके विचारोंमें जो परिवर्तन आता है, उसके द्वारा कोई भी कैलासकी आध्यात्मिक ऊर्जाको अनुभूत कर सकता है।

'प्रगटे महिभार उतारन को'

(श्रीशरदजी अग्रवाल)

साकेतपुरी के पालक जो,
उनके भी प्यारे बालक जो,
वैकुण्ठ-धाम के स्वामी वो,
प्रगटे महिभार उतारन को॥ १॥

घुँघराली अलकों वाले जो,
प्रभु श्याम सलोने प्यारे जो,
निज प्यारों के मनरंजन को,
प्रगटे महिभार उतारन को॥ २॥

संतन के ताप निवारण को,
गौतम-नारी दुःख वारण को,
शबरी के तप के कारन जो,
प्रगटे महिभार उतारन को॥ ३॥

मनु-शतरूपा तप कारन जो,
कुलगौरव और बढ़ावन को,
सरयू-तट क्रीडा कारन जो,
प्रगटे महिभार उतारन को॥ ४॥

इक-नारी-व्रत के पालक जो,
इक-दिव्य-बाण संचालक जो,
इक-वचन-धर्म प्रतिपालन को,
प्रगटे महिभार उतारन को॥ ५॥

वन-पथ को पावन करने को,
वनवासीजन-मन हरने को,
वन-जीवन मंडित करने को,
प्रगटे महिभार उतारन को॥ ६॥

श्रीराम-राज स्थापन को,
खल-असुरों के विस्थापन को,
आसेतु देश दृढ़ करने को,
प्रगटे महिभार उतारन को॥ ७॥

नारद सनकादिक कारण जो,
निज द्वारपाल उद्धारण को,
देवों की विनती कारन जो,
प्रगटे महिभार उतारन को॥ ८॥

मध्य भारतकी लोक संस्कृतिमें राम

(डॉ० श्रीमती सुमनजी चौरे)

भगवान् विष्णुके दशावतारकी अवधारणामें नरसिंहावतारके बाद नरावतारमें वामन और ऋषि परशुरामके अवतारोंकी कथाएँ तो पुराणों तथा अन्य शास्त्रोंके माध्यमसे समाजमें प्रचलित रहीं, किंतु आदर्शावतार प्रभु राम और लीलावतार श्रीकृष्णने तो लोकके रोम-रोममें वास किया और लोक जीवनके हर पहलूको प्रभावित किया है। इनमें भी रामने अपने मर्यादापुरुषोत्तम रूपको जन-जनके समक्ष प्रस्तुत किया, इसीलिये राम सबके अपने दिखायी देते हैं। लोक संस्कृतिमें व्याप्त राम माता-पिताको अपने पुत्र, पत्नीको पति, भाईको भाई और मित्रको मित्रके रूपमें दिखायी देते हैं। प्रजा आज भी राजामें अपने रामके स्वरूपको देखना चाहती है। माता कौसल्या उन्हें भगवतस्वरूपमें नहीं, बल्कि पुत्ररूपमें ही देखती हैं। श्रीरामचरितमानसमें गोस्वामी तुलसीदासजीने वर्णन किया है—

लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी॥

अर्थात् प्रभु जब प्रकट हुए तो उनका नेत्रोंको आनन्द देनेवाले मेघके समान श्याम शरीर था, उन्होंने चारों भुजाओंमें अपने खास आयुध धारण किये हुए थे। इस प्रकार शोभाके समुद्र तथा राक्षसोंको मारनेवाले भगवान् प्रकट हुए। गोस्वामीजीने बालकाण्डमें यह वर्णन उस अवसरका किया, जब माता कौसल्याके गर्भसे बालरूपमें रामने जन्म लिया और तुरन्त अपना चतुर्भुजरूप प्रकट किया। माता कौसल्याने बड़े ही सहज भावसे विनती की, हे प्रभु! अपने इस रूपको त्यागकर बालरूपमें मेरी गोदीमें आओ। आगे गोस्वामीजी इस छन्दमें कहते हैं—

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा॥

अर्थात् माताकी बुद्धि बदल गयी, तब वे बोलीं— हे तात! यह रूप छोड़कर अत्यन्त सुखद बाललीला करो। माताके वचन सुनकर देवताओंके स्वामी भगवान्ने बालरूप होकर रुदन करना शुरू कर दिया। कौसल्याकी कोखसे रामने जन्म लिया और जन्मसे ही माताका मातृत्व, वात्सल्य प्रेम-भाव हृदयसे निःसृत हुआ। रानी कौसल्या भूल गयीं कि उन्होंने भगवान्को अपनी कोखसे जन्म लेनेके लिये साधना—तपस्या की, किंतु शिशुके जन्म लेते ही उसे देखकर अपनी गोदमें दूध पीते हुए किलकारियाँ भरते बाललीलाएँ देखनेकी कामना जाग्रत् हो उठी। लोकके अन्तर्मनमें जाग्रत् हुई श्रद्धा और आस्थाभरी कामना ही लोकव्यवहारका मूल है। यही लोक-लालसा, लोक-कामना, लोकदर्शन, लोकानन्द है, जिससे लोक अपने-आपको राममय पाता है। इस धरापर पुरुषोत्तम रामके आदर्श जीवन और उनके रामराज्यको अनुभूतकर भारतीय लोक संस्कृति राममय हो उठी है।

रामका हर रूप, उनकी हर अवस्था, उनका हर कार्य अपनत्वका बोध कराता है, लोकने अपने संस्कारोंमें रामको हर पल, हर क्षण अपने निकट पाया है। राम विश्व-विश्रुत हैं, भारतके तो वे अपने ही हैं, मध्य भारतकी निमाड़की लोक संस्कृति राममय है, निमाड़में जन्म-संस्कारसे पूर्व एक लोक व्यवहार होता है। गर्भाधानके सातवें मास या नौवें मासमें गर्भिणीकी गोद भरी जाती है, इस अवसरपर सन्तान पानेकी कामना और अभिलाषाके गीत गाये जाते हैं। इन गीतोंमें कामना होती है कि हमारे घरपर जो सन्तान जन्म लेनेवाली है, वह राम-जैसी ही हो या राम ही हो। इस अवसरका एक गीत द्रष्टव्य है—

कुल देवी सी करूँ अरदास
म्हारा घर राम जलम,
राम जलम न भरत जलम
हमारा घर राम जलम
राम जलम ते ऋषि आज्ञा पाल
आज्ञा पाल तो ताड़का मार ""राम जलम
राम जलम तो पितु आज्ञा पाल

अज्ञा पाल तो वन सिधार
वन सिधारी रावणा मार ''''राम जलम
रामजलम तो सबरी अहिल्या तार
जग को कर उद्धार ''''राम जलम
राम जलम तो राम राज चलाव
दीन दुखियाँ को कर उद्धार ''''राम जलम
कुल देवी सी करा अरदास
हमारा घर राम जलम

अर्थात् हे कुलदेवी माता, आपसे प्रार्थना है कि हमारे घर राम-जैसा और भरत-जैसा पुत्र उत्पन्न हो। रामका जन्म होगा तो वह ऋषिकी आज्ञासे ताड़का-सुबाहुका वध करेगा। राम-जन्म लेगा तो पिताकी आज्ञा पालनकर वन जायगा। रावण और राक्षसोंका नाश करेगा। राम जन्मेगा तो शबरी-अहल्याका उद्धार करेगा। रामराज चलायेगा और दीन-दुखियोंका पालनकर जगत्का उद्धार करेगा। लोकगीतोंमें राम-जैसे पुत्रकी कामना और राम-जैसे आचरणकी तीव्र लालसा, उन्हें (माताको) अपनी सन्तानके लिये रहती है। यह भावलोकका रामके प्रति अपनत्वका भाव है, राम-जैसे पारिवारिक, सामाजिक, व्यावहारिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवनकी अपेक्षा और आज्ञापालक सन्तानकी कामना लोककी हर माता करती है। आज्ञाकारी पुत्र या सन्तानकी आशा लोककामनाका एक उदात्त स्वरूप है। श्रीरामने सर्वथा प्रतिकूल होनेपर भी कैकेयीको अपनी माताके समान ही आदर करते हुए वनवासको स्वीकार किया था, ऐसा उदाहरण विश्वमें ढूँढ़नेपर भी नहीं मिल सकता है। रामके इसी आचरणके कारण लोक राम-जैसे पुत्रकी कामना करता है। लोकमें सन्तानोत्पत्तिके अवसरपर जो बधाइयाँ गायी जाती हैं, उनमें दशरथको दी बधाई पहले गायी जाती है। महल हो, अट्टालिका हो या झोंपड़ी हो, सन्तानके जन्मपर जो बधाई गायी जाती है, वह एक ही भावकी होती है। एक बधाई गीत द्रष्टव्य है—

आज तो बधाई, राजा दशरथ राय क्याँ।
चम्पो फूल्यो मोंगरो फूल्यो अति सुख पाय के।
राणी कौसल्या असी फूली, रामचंद्र जाय के॥
राणी कैकेयी असी फूली भरत लाल जाय के।
गेंदो फूल्यो, दवणो फूल्यो, अति सुख पाय के॥
राणी सुमित्रा असी फूली लखन लाल जाय के।
राणी सुमित्रा असी फूली सत्रुहन जाय के॥
आज तो बधाई राजा जनक राय क्याँ।
जाती फूली-जूही फूली अति सुख पाय के॥
राणी सुनैना असी फूली सीता उर्मिला जाय के।
केवड़ों फूल्यों मोंगरो फूल्यों अति सुख पाय के॥
मोठी ववू असी फूली, नानी नानी ववू असी फूली।
पुत्र सुख पाय के, दीय सुख पाय के॥
आज तो बधाई मोठा जी भाई राय क्याँ।
आज तो बधाई नानाजी भाई राय क्याँ॥

अर्थात् राजा दशरथके यहाँ आज बधाई आ गयी है। चम्पा फूल उठा है, मोंगरा फूल उठा है अति सुख पाकर, रानी कौसल्या अति आनन्दसे फूल उठी हैं, रामचन्द्र-जैसे पुत्रको जन्म देकर। रानी कैकेयी ऐसी ही आनन्दित हो गयी हैं भरतजीको जन्म देकर। गेंदा फूल उठा है, दवणा फूल उठा, ऐसे ही रानी सुमित्रा आनन्दित हो उठी हैं। लक्ष्मण और शत्रुघ्न-जैसे पुत्रोंको जन्म देकर। चमेली फूल उठी, जूही फूल उठी अति सुख पाकर ऐसे ही रानी सुनैना सीता तथा उर्मिला पुत्रियोंको जन्म देकर प्रसन्न हो उठी हैं। आज राजा जनकके घर बधाई है। केवड़ा फूल उठा है, मोंगरा फूल उठा है। अति सुख पाकर ऐसे ही मोठी बहू, छोटी बहू प्रसन्न हो गयी है। पुत्र पाकर, पुत्री पाकर। आज बड़े भाई, छोटे भाईके घर बधाई है। लोक अपने आराध्य देवी-देवताओंके साथ तादात्म्य भाव स्थापितकर उन्हें अपने साथ सदैव रखते हैं। राम तो जैसे लोकके रोम-रोममें रमते हैं, इसलिये लोक अपनी सन्तानकी बधाईमें सबसे पहले राजा दशरथको बधाई देते हुए गाते हैं—

काई बधाई छे जी आज राजा दसरथ घर
छाइ बधाई छे जी आज राजा दसरथ घर
कौसल्या की कूख प्रभु न जलम लिया छे
दुष्ट दलन दुख हार राजा दसरथ घर

एक लक्ष गौआ राजा दसरथ नदीवी
माणी मणासा दियो अन्न राजा दसरथ घर।
हीरा माणिक रतन कौसल्या न दीया
गला का हरवा दीया दान राजा दसरथ घर

आज क्या बधाई है? क्या आनन्द है? आज राजा दशरथके घर आनन्द बधाई छा रही है। रानी कौसल्याकी कोखसे प्रभु रामचन्द्रजीने जन्म लिया है। इसी आनन्दमें राजा दशरथने स्वर्ण-जड़ित सींगोंकी एक लक्ष गायें दान दे दी हैं और मणि, माणिक और अन्नका दान कर दिया है। माता कौसल्याने हीरा, माणिक, रत्न तो दिये ही अपने पुत्रकी खुशीमें कण्ठकी प्रिय कण्ठीतक दान कर दी है। सर्वत्र रामजन्मकी बधाई छा गयी है और सब लोग दान लेकर, खुशीसे आशीष दे रहे हैं।

राम लोक जीवनकी श्वास-प्रश्वासमें ऐसे समाये हैं कि निमाड़ क्षेत्रमें तो सम्बोधन, अभिवादन भी ***'जे राम जी की'*** कहकर किया जाता है। यहाँके जन-जनके अचेतन मनमें भी राम ऐसे समाये हैं कि नन्हें बालक-बालिकाएँ भी रामकी आपत्ति-विपत्ति पीड़ासे स्वानुभूत हो उठते हैं। बालपनसे ही रामकी इसी संवेदनाके गीत बालगीतोंमें सुनायी देते हैं। यह घर-घरमें सुनायी जानेवाली रामकथा मंचोंपर अभिनीत होनेवाली रामलीला और मन्दिरोंमें होनेवाले रामायण-पाठका असर ही है। रामको वे अपने-जैसे समझते हैं और उस वेदनासे वे व्यथित हो गाते हैं—

राम चल्या वन ख माता
हम भी चली जावांगा
बेटा तूख तीस लगडगा
पाणी फॉ पावगां
लई जवांगा झारी कलथ्या
पीता चली जावांगा
बेटा तूख भूख लगड़गा
भोजन कॉ पावँडगा
तोड़ी लेवाँगा वन फल लग्या
खाता चली जावाँगा
बेटा तूख नींद आव गा
सोवणू काँ कर गा
बिछई लवाँगा सूख पान्टा
भूमि म सूता जावाँगा
वहॉज हमख राम मिलन
बाण छोड़ता जावाँगा
राक्कस मारता जावाँगा
राम ख नी छोड़ाँगा

अर्थात् हे माता, रामचन्द्र वनको जा रहे हैं, हम भी उनके साथ चले जायँगे। माता पूछती है—हे पुत्र! तुम्हें प्यास लगेगी तो पानी कैसे पीयोगे? तुमको भूख लगेगी तो भोजन क्या करोगे? नींद आयेगी तो कहाँ सोवोगे? हे माता! हम लोटा-झारी ले जायँगे, उसीसे जल भरकर पानी पीते-पीते चले जायँगे। वनमें जो वन फल लगे हैं, उन्हींको तोड़कर खाते चले जायँगे। हे माता! वनकी सूखी घास-पत्तोंका बिस्तर बनाकर जमीनपर ही सो जायँगे। वहीं रामचन्द्रजीके साथ बाण-तीर चलाकर राक्षसोंको मार डालेंगे, किंतु रामको अकेला नहीं छोड़ेंगे, उनके साथ ही वन चले जायँगे। रामके प्रति अगाध श्रद्धा दर्शाते हुए बालकोंके झूलेके बहुतसे गीत हैं—

दुखी मत हुजो रे परभु राम
वन म संगात हम भी रवाँगा
जद सीता मैया राँहाणी कर गा
लाकड़ी कण्डा न पाणी हमद भराँगा
जद सीता मैया थाल परोसगा
थाल परोस न रामलखन जीमड़
जीमता वीरा न ख हम भी देखाँगा
मुदित मन हम भी रमाँगा
वन म संगात हम भी चलाँगा।

हे राम! दुखी मत होइये। हे प्रभु! हम भी आपके साथ वनमें चलेंगे। जब सीता मैया भोजन बनायेंगी, तो हम लकड़ी, कण्डा, चूल्हा जलाने और पीनेके लिये पानी भरकर ला देंगे। जब सीता मैया भोजन बनाकर थाल परोसेगी, थाल परोसते ही राम-लखन वीर भोजन करेंगे। उन भाइयोंको देखकर हम मन-ही-मन आनन्दित हो जायँगे। हम आपके साथ वनमें चलेंगे, अकेले नहीं

जाने देंगे। इन बालसुलभ भाव गीतोंमें नर-नारायणका भेद तनिक भी नहीं प्रतीत होता है। यही लोक देवता हैं, जहाँ हर अवसरपर पहले रामको स्मरण किया जाता है। विवाहके अवसरपर जब लग्न पत्रिका लिखी जाती है। उस अवसरपर जो बधाई गीत गाये जाते हैं, उसमें सबसे पहले सीता-रामके लिये ही बधावा गाया जाता है—

खुशी भई न म्हारा मन की
आज बधाई सीया राम की
राजा दशरथ न रत्न लुटाया
हाथी घोड़ा पालकी
राजा जनक न गौआ छोड़ी
स्वर्ण सींग जटित दा की
आज बधाई सीया राम की।
राणी कौसल्या न माणिक लुटाया
हीरा मोती थाल लाल भी
राणी सुनैना न वस्त्र लुटाया
रेशम जरी न मसरू थान की
आज बधाई सीया राम की

अर्थात् मेरे मनमें आनन्द-हर्ष छा रहा है। आज सीतारामके विवाहकी बधाई। इस अवसरपर राजा दशरथने रत्न, हाथी, घोड़ा, पालकी सब लुटा दिये। राजा जनकने गौशालामें बँधी स्वर्ण सींगजटित दूध देनेवाली एक लक्ष गायें सीता-रामके विवाहकी बधाईमें दान कर दीं। राणी कौसल्याने माणिक-मोती और हीरे-जवाहरातके थाल भर-भरकर लुटा दिये हैं। राणी सुनैनाने जरी मशरू रेशमके वस्त्रोंके थान-के-थान ही दान कर दिये। आज राम-सीताके विवाहकी हर्ष और आनन्दकी बधाई है। आत्मा-परमात्माका जहाँ भेद न हो, वही लोक तो राममय है, हर जगह राम हैं। सब कुछ राम ही हैं, लोकमें कहा जाता है—

मुड़ा में राम न हाथ में काम
उठत राम बठत राम पड़त राम
जीवत राम भरत राम राम मय
राम सी जीवन सकाम राम राम

अर्थात् बोल-चालमें कहते हैं कि भगवान्की भक्ति या पूजामें क्या विधान? मुँहसे रामका नाम लो और हाथसे काम करो। उठते-बैठते, सोते-जागते, जीते-मरते रामका नाम लें तो जीवन सार्थक होगा। लोकने राम-नामके जपको सरल साधनाका मन्त्र माना है। राम-नामसे सम्बन्धित बहुतसे रिवाज, लोकाचार, लोकव्यवहार और लोकाचरण जीवनको प्रभावित करते हैं। सत्याचरण, मातृभक्ति, पितृ-आज्ञा, भ्रातृ-प्रेम, राज्य-शासन, लोकाचरण और एकपत्नीधर्मकी बात होती है तो लोकमें उदाहरण दिया जाता है कि पुत्र हो तो राम जैसा। कहावत भी बनी है, जैसे—

राम की लाकड़ी मड आवाज नी होती।
राम नाव की लाकड़ी मड जीभ नी हाँई।

अगर किसीका जीवन अनाचरणसे भरा होता है तो यही कहते हैं कि रामकी सीख गुपत (गुप्त) रहती है। राम शक्ति और शक्ति-संचारका घोलक भी है, निर्बल शक्तिके लिये यह न कहकर कि वह अशक्त है, उसके लिये एक लोक सूक्ति है—

'ओक सरी म राम नी हाँइ' अर्थात् उसके शरीरमें राम नहीं हैं, शक्ति ही राम है। राम राम नी होय तो जीवनी होय राम ही जीवात्मा है। लोक ऐसा रमा है राममें।

जब किसीमें मतभेद हो जाता है, तो कहते हैं—'थारो राम, ओको राम कोई भेदयो नी हाँई' अर्थात् तेरा रक्षक उसका रक्षक एक है, उसमें भेद नहीं है।

रामको आदर्श राजा और मर्यादा पुरुषोत्तम कहते हैं, किंतु जब भावनाकी बात आती है, तो राम एक सामान्य आचरण करते हुए दुखी नजर आते हैं। रामके आदर्शका संबल भाई भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न रहे हैं। सीताकी खोजमें हनुमन्तने जो भक्ति-भावका परिचय दिया, ऐसा ही भाव लक्ष्मणका भी वनवासकालमें साथ रहा। जब लक्ष्मणको शक्ति लगी, तब राम विकल हो उठे। करुणावतार करुणाके सागर इतने द्रवित हो उठे कि भाईको गोदमें लेकर विलाप कर रहे थे। उस रुदनको सुनकर लग रहा था कि स्वयं करुणा भी करुण हो उठी है। वे पछतावा कर रहे थे कि ऐसा भाई इस संसारमें फिर पैदा नहीं होगा, ऐसी माता जिसने अपने पुत्रको भाईके

लिये न्यौछावर कर दिया, ऐसी माता नहीं होगी दूसरी।

तुख कुणनस्मारयो बाण
बतई द रे लछमण वीरा
आपको करूँ धरती सी नास
बतई द रे लछमण वीरा
हाऊँ अजुध्या कसो जाऊँगा
थारा बिनस्कसो हाऊँ रहूँगो
माता खस् काई कऊँग वात
बतई द रे लछमण भाई
हाऊँ मह्यल म कसो जाऊँगा
माता ख काई समझाऊँगा
उर्मिला ख काई दई समझाऊँगा
रड़ग सुनैना मात
बतई द रे लछमण वीरा
एक वारी उचाड़ी द वाच लछमण वीरा
बतई द रे लछमण वीरा

अर्थात् हे मेरे अनुज, तुझे किसने बाण मारा है? तू मुझे बता दे, मैं उसका धरतीसे नाश कर दूँगा। हे भाई, तेरे बिना मैं अयोध्या कैसे जा सकता हूँ? और तेरे बिना मेरा जीवन कटेगा भी कैसे? मैं माताको क्या उत्तर देकर समझाऊँगा? उर्मिलाके सामने कैसे खड़ा हो सकूँगा? उसे उसकी माता सुनैना (सुनयना) भी तो पूछेगी, कि उसकी बेटीका पति कहाँ है? क्या उत्तर दूँगा मैं? हे भाई, तू एक बार तो आँख खोल और कुछ शब्द तो बोल, तुझे किसने बाण मारा है? भाईसे भाईका ऐसा प्रेम-सम्बन्ध निज भाव देखनेको सुननेको नहीं मिलता है। इस प्रसंगके बाद घोर युद्ध हुआ। रामने रावणपर विजय प्राप्त की। राम अपने साथ सीता और लक्ष्मणसहित लंकासे अयोध्या लौटे। उन्होंने वचनका पालन किया। उनका राज्याभिषेक हुआ। फिर राम लोकापवादसे घिर गये। उस समय रामने अपना सर्वस्व त्याग दिया। हर संकटकी घड़ीमें साथ खड़ी रहनेवाली सीतातकका त्याग कर दिया। फिर भी लोकने क्षमा नहीं किया। किंतु रामका जीवन लोकहितमें समर्पित रहा। लोकने रामको अवताररूपमें या देवरूपमें नहीं देखा ना ही स्वीकारा। लोकने रामको लोक मानव मानकर अपनी कसौटीपर कसा। रामको अपने ही बीच पाया और अपना ही समझा। लोकदृष्टि सूक्ष्म भी है, विराट् भी है। वह रामके बिना नहीं रह सकती।

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम

(पद्मश्री श्रीअभिराज राजेन्द्रजी मिश्र)

निखिल विश्व संस्कृति में जनमा नहीं राम सा बेटा।
मात पिता की आज्ञा जिसने वैभव-सौख्य समेटा॥ १॥

स्नेहमूर्ति रघुनन्दन जैसा हुआ न कोई भाई।
भरत हेतु वनवासी बनते कटुता जिसे न आई॥ २॥

सखा राम सा हुआ न कोई जो परदु:खदुखारी।
वैरी मान मित्र वैरी को उसका जो अनुसारी॥ ३॥

समदर्शी श्रीराम-सरीखा कौन भला है दूजा?
मुनि अगस्त्य-शबरी-जटायु को एक भाव से पूजा॥ ४॥

परदुखकातर कौन राम सा, जो परदुख में रोए।
अश्रुपात से, शिला बनी ऋषिपत्नी के पद धोए॥ ५॥

कौन राम सा बाहुबली जिससे सागर जल जाए।
सात तालवृक्षों को एक ही शर से काट गिराए॥ ६॥

कौन प्रियावल्लभ राघव सा, बीज विरह का बोया।
प्रजाहेतु त्यागा सीता को, किंतु रात-दिन रोया॥ ७॥

कौन राम-सा प्रजानुरंजक, पृथक् न अपना जीवन।
जिसके लिये अयोध्या भी थी चित्रकूट, दण्डकवन॥ ८॥

कौन राम सा वैरी होगा, शत्रुगुणों का शंसी।
रावण की बल-वीर्य-वैदुषी का जो था अनुशंसी॥ ९॥

शिष्य राम सा कौन दूसरा जो गुरुपदानुरागी।
कौशिक-आज्ञा मान ताटका हती, बने बड़भागी॥ १०॥

स्वामी कौन राम सा होगा, जो 'सेवा' पहचाने।
आंजनेय जैसे सेवक का ऋणी स्वयं को माने॥ ११॥

कौन राम सा मुक्तिप्रदाता गया न स्वर्ग अकेला।
अपने संग ले गया स्वर्ग जो सकल प्रजा का मेला॥ १२॥

मर्यादापुरुषोत्तम राघव, मर्यादा-समलंकृत।
राष्ट्र उन्हीं मर्यादाओं से अब भी है संरक्षित॥ १३॥

‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ की सोच नितान्त आवश्यक

(श्रीश्यामसुन्दरजी मिश्र)

विज्ञान एवं भौतिकताके वर्तमान युगमें ईश्वरीय सत्ताकी उपेक्षाका चलन-सा बन गया है, किंतु विपदाग्रस्त होते ही न चाहते हुए भी मुँहसे निकल पड़ता है। ‘हे भगवान्! किस संकटमें पड़ गया हूँ? रक्षा करो! कष्ट हरो!’ इत्यादि। आज मन्दिरों, मस्जिदों एवं चर्च आदिमें आस्थावानोंकी जो भीड़ दिखायी देती है, उनमें निःस्वार्थ श्रद्धा गिने-चुने लोगोंमें ही होती है। बावजूद इसके परमपिता सबके कल्याणकी भावनासे विरत नहीं होते, किंतु अपने ही विधानमें बँधकर उन्हें जीवको उसके कर्मानुसार फल देना ही पड़ता है। ऐसेमें उसकी आलोचना करनेवालोंकी भी कमी नहीं है।

परमपिताने हमें इंसानका चोला प्रदान किया है, इससे बड़ी कृपा और क्या हो सकती है? जिस चोलेके लिये देवगण भी तरसते हैं, वह किसी वरदानसे कम नहीं है। इस तनमें बुद्धि और विवेक नामकी अनमोल निधि भी समाहित है, जो कुबेरके खजानेसे भी महत्त्वपूर्ण है। इसके बावजूद हम बुद्धि और विवेकका दुरुपयोगकर इस चोलेका मान तो घटाते ही हैं, अपने साथ ही दूसरोंके लिये भी संकट एवं पीड़ाओंका सृजन करते ही रहते हैं।

असीम क्षमताओंसे युक्त इस मानव-शरीरसे बुद्धि एवं विवेकके द्वारा हम असम्भवको भी सम्भव करनेकी क्षमता रखते हैं। जबकि जानवर एवं पशु-पक्षी आदि अपनी पीठ खुजलानेके लिये भी बेचैन होकर कोई-न-कोई युक्ति ढूँढ़ने लगते हैं। वे न तो इन्सानों-जैसे स्वादिष्ट भोजन बना सकते हैं, न ही सभी सुविधायुक्त आवास। प्रकृतिमें जो भी उन्हें अनुकूल प्रतीत होता है, उसे ही वे भोजनके रूपमें ग्रहण कर लेते हैं और जाड़ा-गरमी तथा बरसातमें जैसे-तैसे प्राणोंकी रक्षाका प्रयास करते रहते हैं।

पीड़ा इस बातकी है कि ईश्वरप्रदत्त क्षमताओंको अपनी स्वयंकी उपज मानकर हम उसका दुरुपयोग अधिक करते हैं और सदुपयोग नाम-मात्रको। सीधी-सी बात है, जब हम किसी चीजको दूसरेकी धरोहर मानते हैं तो उसका विशेष ध्यान रखना ही पड़ता है और अपनी मानते ही उसका स्वच्छन्द होकर उपयोग करने लगते हैं। जो सदुपयोगसे कहीं अधिक दुरुपयोगकी ओर ही अग्रसर होकर मानवमात्रके लिये संकट उत्पन्न करनेका कारक बन जाता है। जगत्-नियन्ताने न तो इन्सानोंको विभाजित किया है, न ही धरती और आकाशको। अपने अहंकार एवं शक्तिसे प्रेरित होकर ही हमने मनुष्य-मनुष्यमें भेद किया और अपने सुविधानुसार शक्तिके बलपर धरती ही नहीं, आकाशको भी बाँट लिया। आज कुछ देश इसे बर्दाश्त ही नहीं कर पाते कि उनके आकाशसे होकर कोई अन्य देशके जहाज अथवा हेलीकॉप्टर आयें अथवा जायँ। इसी प्रकार बहुत समयसे समुद्रको भी बाँटनेके प्रयास चल रहे हैं।

आजका विज्ञान सृष्टि और मानवकी उत्पत्ति दोनोंसे ही भलीभाँति परिचित हो चुका है। आदि ग्रन्थ वेदोंने भी सृष्टिके उदय एवं ईश्वरीय सत्ताकी भलीभाँति विवेचना की है। दोनों ही एक परम सत्ताद्वारा सृष्टिके उदयको पूर्णतः स्वीकार करते हैं। हमारे धर्मग्रन्थोंमें कण-कणमें ईश्वरीय सत्ता समायी है, इसका उल्लेख है। आज विज्ञानने भी मान लिया है कि सृष्टिके कण-कणमें गॉड-पार्टिकल समाहित है और उसीके चलते जल-थल, पृथ्वी तथा आकाश, वनस्पतियों एवं समस्त जीव-जन्तुओंका निर्माण हुआ है। हमारे चिन्तकोंने आत्माको परमात्माका अंश बताया है, जो हर जीवमें समाहित है एवं अजर-अमर है। पुनर्जन्मकी अनेक घटनाओंकी सत्यताके प्रमाणित होनेपर इसकी पुष्टि भी हो चुकी है। इस प्रकार विश्वके समस्त प्राणियोंका पिता एक ही है। इसी आधारपर सनातन संस्कृतिने **‘वसुधैव कुटुम्बकम्’**का उद्घोष किया है और जीवमात्रके प्रति प्रेम, करुणा तथा दयाका भाव रखनेकी प्रेरणा दी है।

विश्वबन्धुत्वकी भावनाओंका अभाव ही मानव

और मानवताके विनाशका कारण बनता जा रहा है। हर जीवकी प्राथमिक आवश्यकताओंमें भोजन-पानी तथा आवास प्रमुख हैं। इनके अभावमें जीवन असम्भव है। पीड़ा इस बातकी है कि हम अपने जीवनको बचाये रखनेकी कोशिशमें अन्यके जीवनको महत्त्वहीन मानने लगे हैं। दूसरोंके जीवन एवं खाने-पीनेका हक छीननेमें हम तनिक भी कोताही नहीं करते। हम भूल जाते हैं कि मनुष्य प्राकृतिक रूपसे एक सामाजिक प्राणी है और एकाकीपन उसके हृदयमें अशान्ति, बेचैनी एवं घुटन पैदा करनेका कारक बन जाता है। आजका मानव सर्व-सुविधा सम्पन्न होनेपर भी जिस अशान्ति तथा घुटनका अनुभव करता है, वे उसकी स्वयंकी पैदा की हुई समस्याएँ हैं। इससे मुक्ति पानेका एकमात्र उपाय यही है कि हम 'जियो और जीने दो' के सिद्धान्तका पूर्णत: अनुसरण करें। आवश्यकतासे थोड़ा अधिक संचय तो उचित ही है, ताकि भविष्यमें काम आये। किंतु अत्यधिक संचयकी प्रवृत्तिको हवस ही कहा जायगा, ऐसा व्यक्ति धनका वास्तविक सुख प्राप्त करनेसे सदैव ही वंचित रहता है। संचयकी ऐसी मनोवृत्ति एक तरहका विकार ही कहलायेगी, जो लाइलाज है। कोई भी चिकित्सा-पद्धति इसका निदान नहीं कर सकती। निदानका एक ही मार्ग है 'आत्मचिन्तन'। हमें शान्तचित्तसे यह सोचनेका प्रयास करना चाहिये कि हर मनुष्य खाली हाथ आता है और खाली हाथ जाता है। अत: अपने जीवन-कालमें हर सुख-सुविधाका उपभोग करना उसका अधिकार है। पर इसे भी याद रखना होगा कि अन्य लोगोंमें भी उसीकी भाँति भावनाएँ एवं इच्छाएँ हैं। उनका अधिकार छीनकर अपने लिये सुख-सुविधाएँ जुटा भी लें, तो उनकी बद्‌दुआएँ हमें चैनसे सोने भी न देंगी। हर मनुष्यपर वातावरणका गहरा प्रभाव पड़ता है। छोटे-से उदाहरणको ही ले लें। खुशनुमा माहौलमें बाग-बगीचोंमें इष्ट-मित्रोंके साथ बैठकर चना-चबेना खानेमें जो आनन्द आता है, वह फाइव-स्टार होटलमें अकेले बैठकर अच्छे-से-अच्छे भोजन अथवा नाश्तेमें आ ही नहीं सकता। पड़ोसमें यदि कोई पीड़ासे कराह रहा है, तो अपने शानदार एवं सुविधाजनक बँगलेमें बैठकर आप छप्पन भोग ही क्यों न ग्रहण कर रहे हों, आपको अरुचि तथा अशान्ति झेलनी ही पड़ेगी; क्योंकि उसकी कराह पत्थरदिल मनुष्योंके हृदयमें भी थोड़ा-बहुत कम्पन अवश्य पैदा करेगी। ध्वनि तरंगोंका असर कानों एवं हृदयतक ही सीमित नहीं रहता, वह उसके समस्त अस्तित्वमें हलचल पैदा करनेकी क्षमता रखता है। अत: स्वस्थ एवं खुशनुमा वातावरण तैयार करनेका हर किसीको निरन्तर प्रयास करना चाहिये। इसके लिये '**वसुधैव कुटुम्बकम्**' एवं एक परमात्मा, परमपिता परमेश्वरके महामन्त्रको जीवनमें पूर्ण मनोयोगसे समाहित करना ही होगा।

बोध-कथा—

बड़ा त्यागी

एक विरक्त महात्मा नगरमें भिक्षाके लिये गये। एक वैश्य दौड़कर उनके चरणोंमें गिर गया, वे भी उसके चरणोंमें गिर गये। वैश्यने कहा—महाराज! यह क्या करते हैं? महात्माने कहा—तुम क्या करते हो? वैश्यने कहा—प्रणाम करता हूँ, आप त्यागी, विरक्त महात्मा हैं। महात्माने कहा—तुम हमारेसे बढ़कर त्यागी हो, ईश्वर हो, इसलिये हम तुम्हें प्रणाम करते हैं। वैश्यने कहा—महाराज! हम तो गृहस्थ हैं, हम कैसे त्यागी हुए, आप त्यागी, महात्मा हैं। महात्माने कहा—हम कैसे त्यागी हैं? वैश्यने कहा—आपने संसारका, ऐश-आरामका त्याग कर दिया। महात्माने पूछा—बड़ी चीज क्या है, संसारका भोग-पदार्थ या परमात्मा? वैश्यने कहा—बड़ा तो परमात्मा है। महात्माने कहा—तुमने तो परमात्माका त्याग कर दिया, इसलिये तुम बड़े त्यागी हो, हमने तो विषयभोग ही त्यागे हैं। भगवान्‌का भजन, ध्यान आप नहीं करते, त्याग कर दिया, अत: आप बड़े त्यागी हो, हम तो छोटे त्यागी हैं।

संत-चरित—

श्रीविष्णुचित्त (पेरि-आळवार)

आळवार भक्तोंमें श्रीविष्णुचित्तका नाम पहले आता है। इनका प्रसिद्ध नाम 'पेरि आळवार' (महान् आळवार) है, जिनके पदोंका वैष्णवलोग मंगलाचरणके रूपमें गायन करते हैं।

पाण्ड्यवंशके बलदेव नामक राजा थे, जो मदुरा और तिन्नवेली जिलोंपर शासन करते थे। उन दिनों राजालोग अपनी प्रजाके हितका इतना अधिक ध्यान रखते थे कि बहुधा प्रजाके कष्टोंका पता लगाने और उनका निवारण करनेके लिये रात्रिके समय भेष बदलकर घूमा करते थे। बलदेव भी प्रजाको किसी प्रकारका कष्ट न हो, इस बातका बड़ा ध्यान रखते थे। एक दिन रातके समय जब वे मदुरा नगरीमें इसी प्रकार भेष बदलकर घूम रहे थे, उन्होंने किसी आगन्तुकको एक वृक्षके नीचे विश्राम करते देखा। राजाने आगन्तुकसे पूछा—'तुम कौन हो और कहाँसे आये हो?' आगन्तुकने कहा—'महाशय! मैं एक ब्राह्मण हूँ, गंगा-स्नान करके मैं अब सेठूं नदीमें स्नान करनेके लिये जा रहा हूँ। रातभर विश्राम करनेके लिये यहाँ ठहर गया हूँ।' राजाने कहा—'अच्छी बात है, आपकी बातोंसे मालूम होता है कि आप बड़े विद्वान् हैं और देशाटन किये हुए हैं। अत: आप मुझे अपने अनुभवकी कोई बात कहिये।' आगन्तुकने कहा, अच्छा सुनिये—

वर्षार्थमष्टौ प्रयतेत मासान्निशार्थमर्धं दिवसं यतेत।
वार्धक्यहेतोर्वयसा नवेन परत्रहेतोरिह जन्मना च॥

राजाने कहा—'कृपया इसका अर्थ समझाइये।' आगन्तुकने कहा, 'मनुष्यको चाहिये कि आठ महीनेतक खूब परिश्रम करे, जिससे वह वर्षाऋतुमें सुखपूर्वक खा सके, दिनभर इसलिये परिश्रम करे कि रातमें सुखकी नींद सो सके, जवानीमें बुढ़ापेके लिये संग्रह करे और इस जन्ममें परलोकके लिये कमाई करे।' राजाने कहा—'ब्राह्मणदेवता! आप बहुत ठीक कहते हैं, मुझे अपनी भूल मालूम हो गयी। हाय! मैंने अपने अबतकके जीवनको संसारके पचड़ेमें फँसकर व्यर्थ ही खोया। अब मेरी बड़ी अभिलाषा है कि मैं उन गुणोंका अर्जन करूँ, जिनसे मुझे सच्चा सुख प्राप्त हो सके। कृपा करके आप तीर्थयात्रासे लौटकर जल्दी आइये और कुछ दिन मेरे पास रहकर मुझे सच्चा मार्ग दिखलाइये।'

ब्राह्मण राजाको भक्तिमार्गकी दीक्षा देकर वहाँसे विदा हो गये। अब राजाके हृदयमें परमात्माके तत्त्वको जाननेकी उत्कण्ठा जाग्रत् हो गयी। उन्होंने अपने पुरोहित चेल्वनम्बिको बुलाया, जो बड़े सदाचारी और सच्चे विष्णुभक्त थे और कहा—'महाराज! मैं धर्माचरण करके अपने जीवनको सुधारना चाहता हूँ, जिससे मैं भगवान्के चरणोंके निकट पहुँच सकूँ। आप कृपया बताइये कि मुझे क्या करना चाहिये?' पुरोहितने कहा—'राजन्! सन्तों और भक्तोंकी सेवा करना, उनके उपदेशोंका श्रवण करना, उनके संग रहना और उनके आचरणोंका अनुकरण करना—यही सच्चा सुख प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय है और यही मनुष्यमात्रका कर्तव्य है।' 'ऐसे सन्त कहाँ मिलेंगे, कृपाकर बताइये और उन्हें कैसे पहचाना जाय?' राजाने कहा। पुरोहितने उत्तर दिया—'राजन्! भक्तोंके बाह्य वेशको देखकर पहचानना बड़ा कठिन है। वे किसी स्थानविशेषमें नहीं रहते और न उनके रहनेका कोई निश्चित प्रकार ही है। वे चाहे जहाँ और चाहे

जिस रूपमें रह सकते हैं। अत: उनका दर्शन प्राप्त करनेका एक ही उपाय है—वह यह कि देशभरके धर्मों, सम्प्रदायों और मजहबोंके प्रतिनिधियोंकी एक सभा एकत्रित कीजिये और उसमें यह घोषण कर दीजिये—'मैं उस सच्चे और सरल मार्गको जानना चाहता हूँ, जिसपर चलकर हम आनन्दरूप भगवान्‌को प्राप्त कर सकें।' साथ ही यह भी घोषणा करवा दें कि 'जो मनुष्य हमारे प्रश्नका सन्तोषजनक एवं यथार्थ उत्तर देगा, उसे कई भार सोना उपहाररूपमें दिया जायगा।' यों करनेसे आपको कम-से-कम उस सभामें एकत्रित होनेवाले सन्तों और भक्तोंको देखनेका और उनसे सम्भाषण करनेका सौभाग्य तो प्राप्त हो ही जायगा।' राजाने पुरोहितकी आज्ञाके अनुसार मदुरामें सारे धर्मोंके प्रतिनिधियोंकी एक सभा एकत्रित की। शैव, वैष्णव, शाक्त, सूर्योपासक, गाणपत्य, मायावादी, सांख्य, वैशेषिक, पाशुपत, जैन और बौद्ध—सभी धर्मोंके प्रतिनिधि उस सभामें उपस्थित हुए। उनमें परस्पर बड़ा विवाद हुआ, परंतु राजाका समाधान कोई भी नहीं कर सका। उनका हृदय किसी महान् भक्तकी खोजमें था। हमारे चरित्रनायक विष्णुचित्तके सिवा दूसरा कोई भक्त उन्हें कहाँ मिलता। अब उनके पवित्र जीवनका कुछ वृत्तान्त सुनिये।

मद्रासप्रदेशके तिन्नवेली जिलेमें विल्लीपुत्तूर नामका पवित्र स्थान है। वहाँ मुकुन्दाचार्य नामके एक सदाचारी ब्राह्मण रहते थे। उनकी पत्नीका नाम पद्मा था। मुकुन्दाचार्य और उनकी पतिव्रता स्त्री दोनों वटपत्रशायी भगवान् महाविष्णुके मन्दिरमें जाकर प्रतिदिन उनसे एक दिव्य पुत्रके लिये प्रार्थना किया करते थे। उनकी प्रार्थना स्वीकार हुई। हमारे चरित्रनायक उसी ब्राह्मण-दम्पतीके यहाँ अवतीर्ण हुए। ये गरुड़के अवतार माने जाते हैं। इनका जन्म एकादशी रविवारको स्वाति नक्षत्रमें हुआ था। इनकी माताको प्रसवके समय कोई वेदना नहीं हुई। बालक देखनेमें बड़ा सुन्दर था और उसके शरीरके चारों ओर एक दिव्य तेजोमण्डल था। सामान्य बालकोंसे यह बालक कुछ विलक्षणता लिये हुए था। माता-पिताने बालकका बड़े प्रेमके साथ लालन-पालन किया और उसके ब्राह्मणोचित सभी संस्कार करवाये। सातवें वर्षमें उसका यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ। बालकने भगवान् विष्णुको बिना जाने-पहचाने ही अपने अन्तरात्माको उन्हींके चरणोंमें लगा दिया था। अतएव उन्हें लोग विष्णुचित्तके नामसे पुकारने लगे। वे अपना अधिकांश समय भगवान्‌के मन्दिरमें ही बिताते थे और सन्त हरिदासकी भाँति भगवान् नारायणके स्वरूपका ध्यान और उनके नामका जप किया करते और विष्णुसहस्रनामको गाया करते थे। 'नारायण ही सारी विद्याओंके सार हैं और सारे धर्मोंके एकमात्र ध्येय हैं। अत: मैं उन्हींकी शरण ग्रहण करूँगा' ऐसा दृढ़ निश्चय करके उन्होंने अपनेको भगवान् विष्णुके चरणोंमें समर्पित कर दिया। भक्तिके आवेशमें उन्हें संसारकी भी सुध-बुध न रही। अभी वे नवयुवक ही थे कि उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति बेच डाली और बदलेमें एक सुन्दर उपजाऊ भूमि खरीदकर वहाँ एक सुन्दर बगीचा लगाया। प्रतिदिन सबेरे 'नारायण' शब्दका उच्चारण करते हुए वे फूल चुनते और उनके सुन्दर हार गूँथकर भगवान् नारायणको धारण कराते। उन हारोंसे अलंकृत भगवान्‌की दिव्य मूर्तिको देखकर वे मुग्ध हो जाते और निर्निमेष नेत्रोंसे उनकी अनूप रूप-माधुरीका आस्वादन करते। उन्हें भगवत्प्रेमके अतिरिक्त कोई दूसरी बात सुहाती ही न थी। एक दिन रातको विष्णुचित्त बहुत देरतक भजन-ध्यान करनेके बाद विश्राम कर रहे थे कि उन्हें भगवान् नारायणने स्वप्नमें दर्शन दिये और उनसे कहा कि 'तुम तुरन्त मदुरामें जाकर वहाँके धर्मात्मा राजा बलदेवसे मिलो। वहाँ सारे धर्मोंके प्रतिनिधि एकत्र हुए हैं और राजाने यह घोषणा की है कि जो पुरुष सच्चे आनन्दकी प्राप्तिका सर्वश्रेष्ठ मार्ग बतलायेगा, उसे उपहाररूपमें कई भार सोना दिया जायगा। वहाँ जाकर मेरी विजयपताका फहराओ। मेरे प्रेम और भक्तिका महत्त्व लोगोंपर प्रकट करो। वहाँ जाकर यह प्रमाणित कर दो कि भगवान्‌के सविशेष रूपकी उपासना ही आनन्द प्राप्त करनेका एकमात्र सच्चा और सरल मार्ग है।'

विष्णुचित्त भगवान्‌के स्वप्नादेशको पाकर मारे

हर्षके फूले न समाये और भगवान्‌से इस प्रकार कहने लगे—'प्रभो! मुझे आपकी आज्ञा स्वीकार है, मैं अभी मदुराके लिये रवाना होता हूँ। किंतु मुझे शास्त्रोंका ज्ञान बिलकुल नहीं है, मैं तो आपका एक तुच्छ सेवक हूँ। आपके चरणोंको हृदयमें रखकर मैं उस सभामें जाता हूँ। ऐसी कृपा कीजिये कि आपका यह यन्त्र आपकी इच्छाको पूर्ण कर सके।' यों कहकर विष्णुचित्त मदुरा चले गये। राजाने इनका बड़ा सत्कार किया और वहाँकी पण्डितमण्डलीमें विष्णुचित्त नक्षत्रोंमें चन्द्रमाके समान सुशोभित हुए। उन्होंने सबकी शंकाओंका यथोचित उत्तर देते हुए यह सिद्ध किया कि—'भगवान् नारायण ही सर्वोपरि हैं और उनके चरणोंमें अपनेको सर्वतोभावेन समर्पित कर देना ही कल्याणका एकमात्र उपाय है। भगवान् नारायण ही हमारे रक्षक हैं, वे अपनी योगमायासे साधुओंकी रक्षा और दुष्टोंका दलन करनेके लिये समय-समयपर अवतार लेते हैं। वे समस्त भूतोंके हृदयमें स्थित हैं। भगवान् ही मायासे परे हैं और उनकी उपासना ही मायासे छूटनेका एकमात्र उपाय है। उनपर विश्वास करो, उनकी आराधना करो, उनके नामकी रट लगाओ और उनका गुणानुवाद करो। **'ॐ नमो नारायणाय।'**

विष्णुचित्तके उपदेशका राजापर बड़ा प्रभाव पड़ा। वह उनके चरणोंपर गिर पड़ा और उन्हें अपने गुरुके रूपमें वरणकर बड़ी धूमधामके साथ उनका जुलूस निकाला। किंतु विष्णुचित्त इस सम्मानसे प्रसन्न नहीं हुए। उन्होंने बड़े करुणापूर्ण नेत्रोंसे ऊपर आकाशकी ओर देखा तो वहाँ उन्हें साक्षात् भगवान् नारायण महालक्ष्मीके साथ गरुड़पर विराजे हुए दिखायी दिये। वे अपने भक्तका सम्मान देखकर तथा लाखों नर-नारियोंके मुखसे 'नारायण' मन्त्रकी ध्वनि सुनकर बड़े प्रसन्न हो रहे थे। विष्णुचित्त अपने इष्टदेवका दर्शन पाकर कृतार्थ हो गये। वे राजासे विदा लेकर विल्लीपुतूर चले गये और वहाँ उन्होंने कई सुन्दर पद रचकर उनके द्वारा भगवान्‌की अर्चा की। उनके एक पदका भाव नमूनेके तौरपर नीचे दिया जाता है। वे कहते हैं—'वे वास्तवमें दयाके पात्र हैं, जो भगवान् नारायणकी उपासना नहीं करते। उन्होंने अपनी माताको व्यर्थ ही प्रसवका कष्ट दिया। जो लोग नारायण-नामका उच्चारण नहीं करते, वे पाप ही खाते हैं और पापमें ही रहते हैं। जो लोग भगवान् माधवको अपने हृदयमन्दिरमें स्थापितकर प्रेमरूपी सुमनसे उनकी पूजा करते हैं, वे ही मृत्युपाशसे छूटते हैं।'

विष्णुचित्त भगवान्‌की वात्सल्यभावसे उपासना करते थे।

वैराग्य

(श्रीरूपचन्दजी शर्मा)

वैराग्य क्या है? इस सम्बन्धमें महर्षि-मुनियोंने बहुत चिन्तन किया है। अपने विचारोंमें उन्होंने यह आशय व्यक्त किया है कि जीव कहाँसे आया? इसको कहाँ जाना है? वैराग्यका उद्भव कैसे हो सकता है? गीतामें श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं—

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्॥

(१३।८)

अर्थात् इन्द्रियों और अहंकारद्वारा जिन पदार्थोंका भोग किया जाता है, उनमें आसक्त न होना, जन्म-मृत्यु, बुढ़ापा और रोगमें दुःख एवं दोषोंका बार-बार विचार करना ही वैराग्य है।

हमलोग संसारकी वस्तुओंको अर्थात् स्त्री, पुत्र, धन, यश आदिको प्राप्त करनेका प्रयास करते हैं, परंतु ये सभी पदार्थ नश्वर हैं। इस बातकी अनुभूति जिस व्यक्तिको होने लगती है, उसके हृदयमें स्वतः वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। संसारकी वस्तुओंमें आसक्ति मिट जाती है। भगवान् शंकर उमासे कहते हैं—

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना॥

(रा०च०मा० ३।३९।५)

वैराग्य क्या है?—परमार्थके मार्गपर चलनेके लिये विवेककी आवश्यकता होती है। विवेक आनेपर मनुष्यमें वैराग्य आता है। राग यानी मोह और लगावका न होना ही वैराग्य है। मायिक पदार्थोंके प्यार या चाहका नाम राग है। मनसे इनका ध्यान हटा देनेसे मनुष्य वैरागी बन सकता है। विवेकी मनुष्य समझता है कि यह संसार नाशवान् है। सभी पदार्थ नष्ट होनेवाले हैं।

सांसारिक इच्छाओंके अभावको वैराग्य कहते हैं। यह मनकी उस उदासीन अवस्थाका नाम है, जिसमें लोक-परलोकके किसी पदार्थसे मोह नहीं रहता। अपने सिरजनहार करतारके वियोगमें विलाप करना और उसके प्रेममें राग उठना वैराग्य है।

वैरागी वह है, जिसने मोह छोड़ दिया हो और जो संसारसे विमुख होकर प्रभु और प्रभु-प्रेमियोंसे प्रेम करता है।

जो इच्छा और कामनासे रहित है और जिसको मोह कभी नहीं होता, वही वैरागी है। जो व्यक्ति मोहमें व्याप्त है, उसको कभी वैराग्य नहीं हो सकता। दुविधाके कारण न दुनियाकी प्राप्ति होती है और न रामकी—

'दुविधामें दोऊ गये माया मिली न राम'

परमार्थका अभिप्राय है गैर जरूरी वस्तुओंका त्याग करके सार तत्त्वोंको ग्रहण करना। मनुष्य देहधारी आत्मा है। देहद्वारा ही उसका संसारसे सम्बन्ध है। देह मनुष्यको संसारमें विचरने और इसका उपयोग करनेके लिये मिली है। वैराग्य अपनी आत्मा और अन्तःकरणको संसारके पदार्थोंके प्रेमसे विरक्त करता है। मनुष्यको चाहिये कि वह संसारमें गुजारेमात्रके लिये प्रवृत्त हो और अपनी आत्माको मालिकसे जोड़े।

वैराग्य और त्यागमें भारी अन्तर है। त्याग बिना भी वैराग्य सम्भव है और वैराग्यके बिना भी त्याग सम्भव है। त्याग प्रारब्धके साथ सम्बन्ध रखता है। परमार्थीको त्याग करनेकी कोई जरूरत नहीं है। वैरागियोंको वनमें भी दोष लग जाते हैं। सच्चा वैरागी दुनियामें विचरता है, पर वह दुनियाका गुलाम नहीं होता। वह समझता है कि एक दिन अकस्मात् उसको अपने शरीर, घर-बार, महल और संसारके सब सामान छोड़ जाने हैं। इसलिये वह संसारमें गुजारेमात्रके लिये प्रवृत्त होता है।

वास्तवमें संसारके पदार्थोंका त्याग ही वैराग्य है। सांसारिक इच्छाओंको हृदयसे त्याग देनेका नाम ही वैराग्य है। सच्चा वैरागी वह है, जो मालिकको भाये और जो गुरुके आदेशके अनुसार कमाई करे। वह प्रभुकी सेवा और ध्यान करते हुए घट-घटमें प्रभुके दर्शन करता है।

जिसने गुरुदेवको प्रत्यक्ष जान लिया है, वह सदा वैरागी है। ऐसा वैरागी परनिन्दाको छोड़ देता है। वैरागीमें प्रभुसे मिलनेकी प्रबल चाह होती है। वह प्रभुके बिना रह नहीं सकता। सन्तोंका कहना है कि सद्गुरुकी सेवा और ज्ञानके बिना घोर अन्धकार है और शब्दके बिना कोई जीव भवसागरसे पार नहीं हो सकता। जो शब्द, नाम या सत्यमें लीन हो जाय, वह ही पूर्ण और श्रेष्ठ वैरागी है।

वैरागी वह है, जो हरिके रंगमें रँगा हुआ हो। अमृत और हरिरसको पीनेवाला ही वैरागी है, जो दिन-रात अन्तर-ध्यान रहता है, वह सत्यमें समा जाता है। जिसने सकल विषय माया-ममताको त्याग दिया है और सब ओरसे मनमें वैराग्य धारण किया है, वह उच्च कोटिका वैरागी है।

जिसको प्रभु अभय प्रदान करता है, उसका भयसे मनमें सच्चा वैराग्य उत्पन्न होता है। वैराग्य हरिके आगमनका अग्रदूत है। अन्तरमें धुन उत्पन्न होनेसे सच्चा वैराग्य पैदा होता है। वैराग्य मालिककी दया और भाग्यसे ही प्राप्त होता है। यदि वैराग्य हो जाय तो जन्म-मरणका चक्र समाप्त हो जाता है। शोक-वियोग कभी व्याप्त नहीं होता। माया मिट जाती है और सहज आनन्दकी प्राप्ति होती है।

वैराग्य उत्पन्न होनेसे शोक-वियोग कभी नहीं सताते। जन्म-मरणके आवागमनके चक्रसे बच जाता है। माया मिट जाती है। तब जीव हरिके रंगमें लीन होकर आनन्द-ही-आनन्द अनुभव करता है।

तीर्थ-दर्शन—

छत्तीसगढ़स्थित माता कौसल्याका मन्दिर

(डॉ० श्रीप्रदीप कुमारजी शर्मा)

छत्तीसगढ़ अंचलकी शस्य-श्यामला भूमिमें रामायणकालकी अनेकानेक घटनाएँ घटित हुई हैं, जिनके प्रमाण यहाँकी लोक संस्कृति, लोककला, दन्तकथा और लोकोक्तियोंमें देखे जा सकते हैं। ख्यातनाम लोगोंद्वारा लिखित विभिन्न शोधपत्रों, अभिलेखों एवं मान्यताओंके अनुसार मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने वनवासकी एक लम्बी अवधि इस क्षेत्रके विभिन्न स्थानोंपर व्यतीत की थी। वर्तमान छत्तीसगढ़ राज्यकी राजधानी रायपुरके जिला मुख्यालयसे महज २१ किलोमीटरकी दूरीपर स्थित चन्दखुरी नामक गाँवको माता कौसल्यादेवीजीकी जन्मभूमि और श्रीरामचन्द्रजीका ननिहाल माना जाता है, जो दक्षिण कोसलके नामसे पूरे देशमें प्रसिद्ध है। २६ तालाबोंवाले इस गाँवमें जलसेन तालाबके बीचोबीच माता कौसल्यादेवीका दसवीं शताब्दीमें बनाया गया एक ऐतिहासिक मन्दिर स्थित है। प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको गोदमें लिये हुए माता कौसल्यादेवीकी अद्भुत प्रतिमा इस मन्दिरको अद्वितीय बनाती है।

यह दुनियाका एकमात्र मन्दिर है, जो माता कौसल्यादेवीको समर्पित है। इस मन्दिरतक हनुमान पुल नामक पुलपर चलकर पहुँचा जा सकता है, जिसके ऊपर हनुमान्‌जीकी एक बड़ी मूर्ति है। ऐसा माना जाता है कि इस मन्दिरका निर्माण आठवीं शताब्दीमें हुआ था। मन्दिरको कई बार क्षतिग्रस्त किया गया और फिरसे बनाया गया। छत्तीसगढ़का श्रीरामचन्द्रजीसे बहुत जुड़ाव है। उनकी माता कौसल्यादेवीजी यहाँकी बेटी थीं। इस प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी यहाँके भानजे हुए। यही कारण है कि छत्तीसगढ़ अंचलके लोग अपने भानजेके पैर छूते हैं और उनको भगवान्‌की तरह मानते हैं। आजकल हिन्दू धर्ममें भानजोंको मामाके पैर छूनेसे मना किया जाता है। ऐतिहासिक मान्यताओंके मुताबिक यह परम्परा छत्तीसगढ़ अंचलमें ही सबसे पहले शुरू हुई थी। श्रीरामचन्द्रजीके चलते ही आज भी छत्तीसगढ़ अंचलमें मामा अपने भानजोंको भगवान्‌की तरह ही पूजते हैं और उनका पैर छूकर आशीर्वाद लेते हैं। छत्तीसगढ़ अंचलमें श्रीरामचन्द्रजीके पदचिह्न अनेक जगह नजर आते हैं। आमतौरपर भगवान् श्रीकृष्णजीके बाल्यकालके दर्शन तो कई जगहोंपर नजर आते हैं, लेकिन भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके बाल्यकालको दर्शानेवाला यही एकमात्र मन्दिर है।

इतिहासकारोंके अनुसार महाकौशलके राजा भानुमन्तजीकी सुपुत्री कौसल्याजीका विवाह अयोध्याके महाप्रतापी महाराज दशरथजीसे हुआ था। विवाहमें उपहारके रूपमें राजा भानुमन्तजीने अपनी सुपुत्री कौसल्याको दस हजार गाँव दिये थे। इन्हीं गाँवोंमें एक था— चन्दखुरी, जिसका प्राचीनकालमें नाम चन्द्रपुरी था। कौसल्याजीको चन्द्रपुरी बहुत ही प्रिय था। दशरथजीसे विवाहके बाद कौसल्यादेवीने रामचन्द्रजीको जन्म दिया, जो कालान्तरमें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र कहलाये। चन्दखुरीके मन्दिरमें आज भी मौजूद सोमवंशी राजाओंद्वारा बनायी गयी उनकी प्रतिमाको देखनेसे एक अविस्मरणीय अनुभव होता है। यह मन्दिर सात तालाबोंके बीच स्थित है। तालाबके बीच पुलके माध्यमसे इस मन्दिरतक पहुँचा जा सकता है। बरसातके समय

मन्दिरकी शोभा देखनेलायक होती है। मन्दिर-प्रांगणकी सुन्दरता दूरसे ही भव्य दिखायी देती है। इसके चारों तरफ अनेक वृक्ष लगे हुए हैं। यहाँपर एक विशाल उद्यानका निर्माण किया गया है। मन्दिर-प्रांगणमें श्रद्धालुओंको आकर्षित करनेके लिये नाना प्रकारकी प्रतिमाओंका निर्माण किया गया है। इनमेंसे सबसे सुन्दर भगवान् विष्णुजीकी शेषशय्यामें बनी प्रतिमा है, जो तालाबके बीचोबीच स्थित है। मन्दिरके अगल-बगल लक्ष्मीनारायण और समुद्र-मन्थनकी प्रतिमा बनायी गयी है। रामनवमी, अक्षय तृतीया एवं दोनों नवरात्रिके समय यहाँ श्रद्धालुओंकी भारी भीड़ देखनेको मिलती है।

ऐसा कहा जाता है कि अपने वनवासके दौरान श्रीरामचन्द्रजीने यहाँके वनांचलोंमें ही लगभग बारह वर्षका समय बिताया था, जिसे पहले दण्डकारण्यके नामसे जाना जाता था। वनवासके दौरान उन्होंने सबसे ज्यादा समय छत्तीसगढ़ अंचलमें बिताया, क्योंकि यहाँके लोग उन्हें बहुत प्रिय थे। उन्होंने निवाससे पहले केवट और यहाँके वनवासियोंसे मित्रता की। इस दौरान उन्होंने जिस भक्तमाता शबरीके जूठे बेर खाये थे, वह शबरीधाम इसी छत्तीसगढ़ अंचलमें स्थित है, जिसे अब शिवरीनारायण (जांजगीर-चाम्पा जिला)-के तौरपर जाना जाता है। यहाँ भगवान् श्रीराम और माता शबरीके मन्दिर हैं। किंवदन्ती है कि श्रीरामचन्द्र छत्तीसगढ़ अंचलमें उत्तरकी सीमा वर्तमान कोरिया जिलेमें माता सीता और भाई लक्ष्मणके साथ प्रवेश किये थे। फिर सरगुजा, रायगढ़, जांजगीर, बिलासपुर, महासमुंद, राजिम होते हुए वे दक्षिणमें बस्तरके रास्ते आन्ध्रप्रदेश होते हुए श्रीलंका गये थे। इसी तरहसे एक और सम्बन्ध श्रीरामचन्द्रजीके छत्तीसगढ़ अंचलसे है। यह सम्बन्ध ऋषि वाल्मीकिसे जुड़ा हुआ है। दरअसल यहाँके तुरतुरिया पहाड़ (बलौदाबाजार-भाटापारा)-में ऋषि वाल्मीकिजीका आश्रम है, जहाँ श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा परित्यागके उपरान्त माता सीताने शरण ली थी। इसी आश्रममें उनके दोनों पुत्रों—लव और कुशका जन्म और पालन-पोषण हुआ था।

चन्दखुरीस्थित माता कौसल्यादेवीजीका मन्दिर आजकल श्रद्धालुओंके आकर्षणका एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया है, जो राम-वनगमन-पथके अन्तर्गत आता है। यहाँ भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी ५१ फीट ऊँची भव्य प्रतिमा है। छत्तीसगढ़ सरकारने माता कौसल्यादेवीकी जन्मभूमि चन्दखुरीके वैभवको विश्वपटलपर स्थापित करनेके उद्देश्यसे अक्षय तृतीयाके अवसरपर माता कौसल्या-महोत्सव मनानेकी शुरुआत की है।

सन् २०२३ के पहले माता कौसल्या-महोत्सवके अवसरपर यहाँपर श्रद्धालुओंको एक नये रोमांचका अनुभव देखनेको मिला। रामवनगमन-परिपथके अन्तर्गत चन्दखुरीके कौसल्याधाम-परिसरमें करोड़ोंकी लागतसे तैयार वॉटर लेजर लाइट एवं साउंड-शोका शुभारम्भ हुआ। अब श्रद्धालु माता कौसल्या-धाममें इसके माध्यमसे श्रीरामचन्द्रजीके वनवास और वनगमन-पथकी कहानियोंको सुन भी सकेंगे और देख भी सकेंगे। इस शोमें माता कौसल्याजीके जीवन-चरितको दिखाया गया। राम-वनगमन-पथ छत्तीसगढ़की अनूठी सांस्कृतिक विरासत है। यह २२६० किलोमीटर लम्बा है। वर्तमानमें इस परियोजनाका पहला चरण लांच किया गया है। राज्य सरकार विकासके पहले चरणमें राम-वनगमन-पथके ७५ मेंसे ९ स्थानोंका विकास कर रही है। ये नौ स्थल हैं—सीतामढ़ी-हरचौका (कोरिया), रामगढ़ (अम्बिकापुर), शिवरीनारायण (जांजगीर-चाँपा), तुरतुरिया (बलौदा-बाजार-भाटापारा), चन्दखुरी (रायपुर), राजिम (गरिया-बन्द), सिहावा सप्त ऋषि आश्रम (धमतरी), जगदलपुर (बस्तर) और रामाराम (सुकमा)। राज्य सरकारद्वारा श्रीरामचन्द्रजीसे जुड़े हुए इन स्थानोंकी मौलिकताको अक्षुण्ण रखते हुए उनका जीर्णोद्धार एवं विकास करनेकी योजना बनायी गयी है। किंवदन्तियोंके अनुसार राम-वनगमन-पथ भगवान् श्रीरामचन्द्रजीद्वारा वनवास जानेके लिये अपनाया गया मार्ग है। यह रास्ता उत्तरप्रदेशके अयोध्या, मध्यप्रदेशसे लेकर छत्तीसगढ़के दण्डकारण्यके जंगलोंतक जाता है। कोरिया जिलेके

सीतामढ़ीके हरचौकासे लेकर बस्तरके सुकमा जिलेके रामारामतक (दण्डकारण्यके जंगलोंमें) एक परिपथ विकसित किया जा रहा है।

उल्लेखनीय है कि श्रीरामचन्द्रजीसे जुड़े कई स्थल छत्तीसगढ़में हैं, जहाँ वे वनवासके दौरान रुके थे। श्रीरामचन्द्रजीके वनवाससे लौटनेके बाद उनका राज्याभिषेक किया गया। इसके बाद माता कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी तपस्याके लिये चन्दखुरी पहुँचीं। तीनों माताएँ तालाबके मध्यमें विराजमान हो गयीं। ऐसा माना जाता है कि जब यहाँके लोग इस तालाबके पानीका उपयोग अनैतिक कार्योंके लिये करने लगे तो माता सुमित्रा और कैकेयी क्रोधित हो गयीं और दूसरे स्थानपर चली गयीं। लेकिन माता कौसल्यादेवी वहीं विराजमान रहीं।

रामायणकालसे जुड़ी अनेक कहानियाँ भी इस मन्दिर परिसरमें नजर आती हैं। लंकाके वैद्यराज सुषेणकी प्रतिमा इस परिसरमें स्थित है। उल्लेखनीय है कि जब लक्ष्मणजीको शक्ति-बाण लगा था, तब हनुमान्‌जी इन्हें लंकासे लेकर आये थे। ऐसी मान्यता है कि लक्ष्मणजीके इलाजके बाद जब वैद्यराज सुषेण वापस लंका गये, तो रावणने उन्हें शत्रुका उपचार करनेकी सजा दी और लंकासे उनको निकाल दिया। इसके बाद वे भगवान् रामके पास वापस आये, तो भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें अपने ननिहाल चन्दखुरी भेज दिया था। इसके बाद वैद्यराज सुषेण चन्दखुरीके रहनेवालोंका इलाज करते थे।

वैसे भगवान् श्रीरामको लेकर ऐसे कितने ही प्रमाण छत्तीसगढ़ अंचलमें देखने-सुननेको मिलते हैं। यही वजह है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको लेकर छत्तीसगढ़ियोंके मनमें अगाध आस्था दिखती है। भगवान् श्रीरामचन्द्रके प्रति अगाध आस्थाका एक बड़ा प्रमाण जांजगीर-चाम्पा और रायगढ़ जिलेमें रामनामी समुदायके रूपमें भी देखा जा सकता है। इस समुदायके लोगोंके पूरे शरीरमें रामनाम अंकित रहता है। निष्कर्षत: हम यह कह सकते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी छत्तीसगढ़के कण-कणमें हैं, छत्तीसगढ़ियोंके रग-रगमें हैं।

प्रभु राम अवध में लौटे हैं

(श्रीब्रह्मबोधिजी)

मन्दिर में शोभें रामलला,
घर-घर में बाजे है मृदंग!
प्रभु राम अवध फिर लौटे हैं,
अब जलें दीप, अब उड़ें रंग!

कवि वाल्मीकि, तुलसी व कम्ब,
शबरी, जटायु, केवट के संग,
उतरे नभ से प्रभु दर्शन को
पुलकित सबके हिय, अंग-अंग!
आरती-थाल हैं हाथों में,
हिय में हुलास, मन में तरंग!

प्रभु राम अवध फिर लौटे हैं,
अब जलें दीप, अब उड़ें रंग!

दो सौ करोड़ करबद्ध खड़े,
अनगिन आँखों में अश्रु भरे!
सदियों का निर्वासन टूटा,
प्रभु लौटे आज, प्रसन्न धरा!
हर हृदय अयोध्या बने यहाँ,
सब पर चढ़ जाए राम रंग!

प्रभु राम अवध फिर लौटे हैं,
अब जलें दीप, अब उड़ें रंग!

कलियुग त्रेता की ओर मुड़े,
फिर रामराज्य से तार जुड़ें,
संस्कृति का वह अध्याय खुले,
जिसमें लक्ष्मण और भरत मिलें।
हर केवट को सम्मान मिले,
हर रावण का हो मान भंग!

फिर राम अवध में लौटे हैं,
बाजे है तक-धिन मन-मृदंग!

आरोग्य-चर्चा— अमृततुल्य आयुर्वेदिक औषधि—सितोपलादि चूर्ण

(श्रीगोवर्धनदासजी बिन्नानी)

एक दिनकी बात है, हमेशाकी तरह जब हम सभी वरिष्ठ दोस्त शामको आपसी बातचीतके लिये निश्चित जगह इकट्ठे हुए तब मुझे कुछ अजीब-सा लगा, जब दो साथी कुछ दूर अलग-थलग शान्त बैठे मिले। पूछनेपर पता चला कि बरसातके चलते हुए ठंडे मौसमके कारण उन्हें हलका जुकाम हो गया है। अत: सावधानी बरतते हुए थोड़ी दूर अलग बैठना उचित समझा, इसलिये ही उस जगह बैठे हैं।

तब मैंने उनसे पूछा—आपने सितोपलादि चूर्ण लिया क्या?

उनके 'न' कहनेपर मैंने उन सभीको सम्बोधित करते हुए बताया कि हमारे पूर्वज खाँसी-जुकाम लगते ही उस समस्याका इलाज आयुर्वेदिक औषधि सितोपलादि चूर्णसे कर लेते थे। अधिक सर्दी लगने, शीतल जल अथवा असमय अर्थात् पसीनेसे नहाये हुए बदनका ख्याल न कर जल पी लेनेसे जुकाम हो गया हो, तब यह चूर्ण लिया जाय, तो काफी राहत मिल जाती है। कभी-कभी यह जुकाम रुक भी जाता है या दूसरे शब्दोंमें बिगड़े हुए जुकाममें भी इस चूर्णका उपयोग लाभप्रद रहता है। इसका कारण यह है कि जुकाम होते ही यदि सर्दी रोकनेके लिये शीघ्र ही उपाय न किया जाय, तो कफ सूख जाता है, जिसके परिणामस्वरूप सिरमें दर्द होता है। सूखी खाँसी चालू हो जाती है साथ ही देहमें थकावट महसूस होने लगती है, अर्थात् आलस्य और देह भारी मालूम पड़ना और सिर भारी होने-जैसे लक्षण उभरते हैं। जैसा आप सभी जानते हैं कि ऐसे समयमें अन्नमें रुचि रहते हुए भी खानेकी इच्छा न होना-जैसे उपद्रव होते हैं। इन सभी स्थितियोंमें इस चूर्णको लेनेसे लाभ मिलता ही है। इस तरह कुल मिलाकर हम जैसे वरिष्ठोंके लिये तो यह सितोपलादि चूर्ण काफी लाभप्रद है। यह चूर्ण गर्भावस्थावाली महिलाएँ भी ले सकती हैं; क्योंकि यह शिशु और छोटे बच्चोंपर तो बहुत ही असरदार रहता है।

इतना सब बतानेके बाद मैंने बताया कि इस चूर्ण-को हम स्वयं अपने घरपर भी बना सकते हैं। दोस्तोंके पूछनेपर मैंने बताया कि सितोपलादि चूर्णके लिये निम्न सामग्री चाहिये—

(१) **मिश्री**—जो शरीरमें वातको कम करती है।

(२) **वंशलोचन**—बाँसकी गाँठोंमें पाया जानेवाला पदार्थ है। इसकी तासीर ठंडी होती है। यह एंटी बैक्टीरियल होता है। यह पौष्टिक पदार्थ है।

(३) **पिप्पली**—उत्तेजक गुणके कारण वात हरता है।

(४) **छोटी इलायची**—त्रिदोषशामक गुण लिये यह कफको ढीला करनेमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। साथ ही मूत्रवर्धक है।

(५) **दालचीनी**—वात तथा कफ कम करनेमें सहायक है। दमा बीमारीमें प्रभावी है।

इतना सब समझानेके बाद घरपर बनानेकी निम्न विधि बढ़िया ढंगसे विस्तारमें समझा दी।

यदि आप पाँच ग्राम दालचीनी लेते हैं, तो फिर आपको छोटी इलायचीके दाने १० ग्राम, पीपल (पिप्पली) २० ग्राम, वंशलोचन असली ४० ग्राम और मिश्री ८० ग्राम लेना पड़ेगा। इसके बाद इस सितोपलादि चूर्णको बनानेकी विधि समझायी, जो इस प्रकार है—

—सबसे पहले मिश्रीको अच्छी तरहसे कुचलकर अर्थात् कूटकर या पीसकर बुकनी-जैसा बना लें।

—फिर उसी तरह वंशलोचन और पिप्पलीको भी कूटकर या पीसकर बुकनी-जैसा बना लें।

—इसके बाद छोटी इलायचीको छीलकर इलायचीके दानोंको अलग कर लें।

—अब दालचीनी और इलायची दोनोंको मिलाकर वापस कूटकर या पीसकर बुकनी-जैसा बना लें।

—अब सभी पीसी हुई चीजोंको एक साफ सूती कपड़ेसे छानकर मिश्रित कर लें। फिर उस मिश्रणको एक वायुरोधक (Airtight) डिब्बेमें भरकर रखें, ताकि बाहरकी नमीसे बचा रहे।

इतना बतानेके बाद एक बार फिर मैंने इस आयुर्वेदिक औषधिके फायदे सरल भाषामें समझा दिये, ताकि किसीके मनमें किसी भी प्रकारकी शंका न रहे।

(१) बरसातके दिन हों या जब भी हलकी सर्दी पड़ती है, तब हलका बुखार, नाक बन्द, सिरमें दर्द इत्यादिमें इस चूर्णके सेवनसे लाभ मिलता है।

(२) यह गीली खाँसी या बलगमवाली खाँसीमें फेफड़ोंमें जमा बलगमको पिघला देता है और इसे बाहर निकालनेमें मदद करता है।

(३) सूखी खाँसी होनेपर सितोपलादि इसे शान्त करनेमें मदद करता है। लगातार कुछ दिनोंतक इस्तेमाल करें तो ये सूखी खाँसीको जड़से खत्म कर देता है।

(४) गलेकी खराश दूर करता है—रातमें इसे शहद मिलाकर चाट लें और आप देखेंगे कि सुबह गलेकी खराश कम हो जायगी। इसके उपयोगसे दमाके लक्षणको नियन्त्रित कर सकते हैं।

(५) इस चूर्णके सेवन करनेसे पाचन-तन्त्र सही रहता है, जिसके फलस्वरूप कब्ज, अम्लता-जैसी समस्याओंसे छुटकारा मिलता है अर्थात् इसका सेवन पेटके लिये काफी लाभप्रद माना जाता है।

(६) रक्तकी कमी होनेपर शरीरमें हीमोग्लोबिनका स्तर बढ़ानेमें भी इस चूर्णका सेवन लाभप्रद रहता है।

(७) हाथ तथा पैरोंके तलवेमें जलनमें भी यह कारगर है। इस समस्याके लिये इसको प्रातः लेना है।

(८) सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि इस चूर्णके सेवन करते रहनेसे रोग-प्रतिरोधक क्षमताको मजबूती मिलती है।

इसके बाद इसे कैसे लेना चाहिये; बताते हुए बता दिया कि इस चूर्णको लेनेके बाद जहाँतक सम्भव हो तीनसे चार घंटेतक पानीका सेवन न करे, साथ ही कुछ खानेके बाद ही लें; क्योंकि खाली पेट लेनेसे गैसकी तकलीफ हो सकती है। इसलिये ही रातको सोनेसे पहले लेनेसे नींद भी ठीक आयेगी और पानी भी दो-चार घंटेके बाद ही पीनेकी आवश्यकता पड़ेगी।

फिर मैंने कितना लेना चाहिये अर्थात् कितनी मात्राके सम्बन्धमें समझाते हुए बता दिया कि पाँच ग्राम सितोपलादि चूर्णको शहदके साथ एक चाँदीकी कटोरीमें बढ़ियासे मिश्रितकर चाट लें। यहाँ ध्यान देनेवाली बात यही है कि शहद इस मात्रामें लें ताकि मिश्रण गलेसे आसानीसे उतर जाय और चाँदीवाली कटोरीको भी जीभसे इस तरह चाटें, जिससे लगे कि कटोरीको बिलकुल सफा कर दिया है।

यदि इस चूर्णको सबेरे लेते हैं तो गोघृत अर्थात् देशी घीमें मिलाकर भी ले सकते हैं। लेकिन हर हालतमें मात्रा बढ़ायें नहीं; क्योंकि मधुमेहकी बीमारीमें कुछ नुकसान हो सकता है। इसलिये साधारण अवस्थामें तो ठीक है, अन्यथा आयुर्वेदाचार्यसे सलाह कर लें।

तत्पश्चात् यह भी सलाह दी कि यदि हम इसे सामूहिक सहभागिता निभाते हुए ज्यादा मात्रामें बनाते हैं, तो लागत कम आयेगी और मेहनत भी सभीमें बँट जायगी। बननेके बाद या तो बराबर मात्रामें बाँट लेंगे, अन्यथा कम-ज्यादा मात्रामें भी आदान-प्रदान कर सकते हैं। अतः इसपर एक-दो दिनमें एक राय कायम कर लेते हैं, फिर आगेकी रूपरेखा बना लेंगे।

उसके बाद उठते-उठते मैंने कुछ निम्न महत्त्वपूर्ण सुझाव इस प्रकार दिये—

(१) सितोपलादि चूर्णको ठंडी और सूखी जगहपर रखें, जिससे धूप उसपर नहीं पड़े।

(२) इस चूर्णके डिब्बेको बच्चोंकी पहुँचसे दूर रखें ताकि इसके स्वादके चलते वे अपने-आप न ले पायें।

(३) जब भी आप बाहरसे आते हैं अर्थात् यदि आप पसीनेमें हैं और पानीकी प्यास है तो एक हाथसे दोनों नाक बन्दकर पानी पी लें, जिससे जुकाम नहीं होगा।

अब आशा करता हूँ कि प्रबुद्ध पाठक इतने विस्तारसे बताये उपर्युक्त सितोपलादि चूर्णके बारेमें जाननेके बाद संक्षेपमें इतना तो अवश्य ही समझ गये होंगे कि यह चूर्ण बढ़े हुए पित्तको शान्त करते हुए कफको छाँटता है अर्थात् गलानेमें सहायक होता है। अन्नपर रुचि उत्पन्न करता है और जठराग्निको तेज भी करता है। साथ ही पाचक रसको उत्तेजितकर भोजन पचानेमें कारगर भूमिका निभाता है।*

* घरमें बनानेमें अड़चन हो तो किसी आयुर्वेदिक ओषधिकी दुकानपर भी यह चूर्ण सहज उपलब्ध रहता है।—**सम्पादक**

गो-चिन्तन—

प्राचीन भारतमें गोसेवाके अद्भुत उदाहरण

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

प्राचीन समयमें लोग गोरक्षाके लिये बड़े-बड़े कष्ट सहनेके लिये तैयार रहते थे, गौके प्राण बचानेके लिये अपने प्राणोंकी भी आहुति देनेमें नहीं हिचकते थे। महाराज दिलीपकी गोभक्ति और अर्जुनका गोरक्षा-व्रत इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। राजा दिलीप चक्रवर्ती सम्राट् थे। गुरु वसिष्ठकी आज्ञासे उन्होंने उनकी गौ नन्दिनीकी सेवाका भार अपने ऊपर ले लिया। इतने बड़े सम्राट् होनेपर भी उन्हें गोसेवा करनेमें लज्जा नहीं आयी। वे स्वयं उसे चरानेके लिये जंगलमें ले जाते और इष्टदेवीकी भाँति उसकी सेवामें दत्तचित्त रहते। वे उसके बैठनेपर बैठते, खड़े होनेपर स्वयं खड़े हो जाते, उसके भरपेट चर लेनेपर ही स्वयं अपनी भूख शान्त करते और उसको जल पिलाकर ही स्वयं जल ग्रहण करते। एक दिन नन्दिनी हरी-हरी घासोंसे सुशोभित हिमालयकी कन्दरामें प्रवेश कर गयी। उस समय उसके हृदयमें तनिक भी भय नहीं था। राजा दिलीप हिमालयके सुन्दर शिखरकी शोभा निहार रहे थे। इतनेमें ही एक सिंहने आकर नन्दिनीको बलपूर्वक धर दबाया। राजाको उस सिंहके आनेकी आहटतक नहीं मालूम हुई। सिंहके चंगुलमें फँसकर नन्दिनीने दयनीय स्वरमें बड़े जोरसे चीत्कार किया। राजाने सहसा पर्वतकी ओरसे दृष्टि हटाकर गौके चिल्लानेका कारण जानना चाहा। उन्होंने देखा, गौका मुख आँसुओंसे भीगा हुआ है और उसके ऊपर भयंकर सिंह चढ़ा हुआ है। यह दु:खपूर्ण दृश्य देखकर राजा व्यथित हो उठे। उन्होंने सिंहके पंजेमें पड़ी हुई गौको फिरसे देखा और तरकससे एक बाण निकालकर उसे धनुषकी डोरीपर रखा तथा सिंहका वध करनेके लिये धनुषकी प्रत्यंचाको खींचा। इसी समय सिंहने राजाकी ओर देखा। उसकी दृष्टि पड़ते ही उनका सारा शरीर जडवत् हो गया। अब उनमें बाण छोड़नेकी शक्ति न रही। इससे वे बड़े विस्मित हुए। जब राजाने देखा कि और किसी उपायसे गौकी रक्षा होनी कठिन है, तब वे स्वयं जाकर सिंहके सामने पड़ गये और उससे कहने लगे कि 'तू इस गायको छोड़ दे और इसके बदलेमें मेरे मांससे अपनी भूख शान्त कर ले।' वह सिंह और कोई नहीं था, नन्दिनीकी माया थी। राजाकी परीक्षाके लिये ही उसने यह माया रची थी। राजाके इस अनुपम त्यागको देखकर नन्दिनी प्रसन्न हो गयी। थोड़ी देरके बाद राजाने देखा कि कहीं कुछ नहीं है, अकेली नन्दिनी मौजसे घास चर रही है।

अर्जुनके गोरक्षा-व्रतकी बात भी प्रसिद्ध ही है। देवी द्रौपदीके सम्बन्धमें देवर्षि नारदके उपदेशसे पाण्डवोंमें परस्पर यह तय हो गया था कि द्रौपदी पारी-पारीसे पाँचों भाइयोंके पास रहेंगी और जिस समय वे एक भाईके पास एकान्तमें होंगी, उस समय कोई दूसरा भाई यदि उनके कमरेमें चला जायगा, तो उसे बारह वर्षतक ब्रह्मचर्यपूर्वक वनमें रहना होगा।

एक समयकी बात है, कुछ लुटेरे एक ब्राह्मणकी गौको चुराकर लिये जा रहे थे। ब्राह्मणने आकर अर्जुनके सामने पुकार की। अर्जुनके धनुष-बाण उस समय महाराज युधिष्ठिरके कमरेमें थे, जो उस समय देवी द्रौपदीके साथ एकान्तमें थे। अर्जुन धर्मसंकटमें पड़ गये। यदि वे शस्त्र लेने युधिष्ठिरके कमरेमें जाते हैं, तो नियम-भंग होता है, जिसके दण्डस्वरूप उन्हें बारह वर्षका वनवास भोगना पड़ता है और यदि वे अपने धनुष-बाण नहीं लाते, तो ब्राह्मणकी गौकी रक्षा नहीं हो सकती। अन्तमें उन्होंने दोनों पक्षोंके बलाबलका विचार करके यही निश्चय किया कि नियम-भंगके लिये कठोर-से-कठोर दण्ड भोगकर भी मुझे गौकी रक्षा हर हालतमें करनी चाहिये। यह निश्चय करके वे चुपचाप महाराज युधिष्ठिरके कमरेमें चले गये और अपने धनुष-बाणको ले आये। ब्राह्मणकी गौको डाकुओंके हाथसे छुड़ाकर ब्राह्मणके सुपुर्द कर दिया और फिर महाराज युधिष्ठिरके पास आकर उनसे नियम-भंगके दण्डरूपमें बारह वर्षतक वनमें रहनेकी आज्ञा माँगी। आज्ञा ही नहीं माँगी, युधिष्ठिरके समझानेपर भी न रुके और वनवासके लिये चल दिये तथा इस प्रकार अपने लिये कठोर दण्ड स्वीकार करके भी अपने गोरक्षा-व्रतको निबाहा।

सुभाषित-त्रिवेणी

पतन और सुखके कारण
[Causes of Decline and Happiness]

अष्टौ पूर्वनिमित्तानि नरस्य विनशिष्यतः।
ब्राह्मणान् प्रथमं द्वेष्टि ब्राह्मणैश्च विरुध्यते॥
ब्राह्मणस्वानि चादत्ते ब्राह्मणांश्च जिघांसति।
रमते निन्दया चैषां प्रशंसां नाभिनन्दति॥
नैनान् स्मरति कृत्येषु याचितश्चाभ्यसूयति।
एतान् दोषान्नरः प्राज्ञो बुध्येद् बुद्ध्वा विसर्जयेत्॥

विनाशके मुखमें पड़नेवाले मनुष्यके आठ पूर्वचिह्न हैं—प्रथम तो वह ब्राह्मणोंसे द्वेष करता है, फिर उनके विरोधका पात्र बनता है, ब्राह्मणोंका धन हड़प लेता है, उनको मारना चाहता है, ब्राह्मणोंकी निन्दामें आनन्द मानता है, उनकी प्रशंसा सुनना नहीं चाहता, यज्ञ-यागादिमें उनका स्मरण नहीं करता तथा कुछ माँगनेपर उनमें दोष निकालने लगता है। इन सब दोषोंको बुद्धिमान् मनुष्य समझे और समझकर त्याग दे।

A man on a destructive path exhibits the following eight tendencies: He is jealous of the Brahmins; he courts their enmity; he usurps their wealth and desires to kill them. He relishes condemning the Brahmins and cannot stand their praise. He does not invite them to the *Yajnas* and finds fault if they ask for any gifts or charity. A wise man ought to give up these evil habits because these would never do any good to him.

अष्टाविमानि हर्षस्य नवनीतानि भारत।
वर्तमानानि दृश्यन्ते तान्येव स्वसुखान्यपि॥
समागमश्च सखिभिर्महांश्चैव धनागमः।
पुत्रेण च परिष्वंगः सन्निपातश्च मैथुने॥
समये च प्रियालापः स्वयूथ्येषु समुन्नतिः।
अभिप्रेतस्य लाभश्च पूजा च जनसंसदि॥

भारत! मित्रोंसे समागम, अधिक धनकी प्राप्ति, पुत्रका आलिंगन, मैथुनमें प्रवृत्ति, समयपर प्रिय वचन बोलना, अपने वर्गके लोगोंमें उन्नति, अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति और जनमानसमें सम्मान—ये आठ हर्षके सार दिखायी देते हैं और ये ही अपने लौकिक सुखके भी साधन होते हैं।

O Bharata! Look for these eight happenings which indicate that people are happy. The same are in themselves a source of joy in this world—1. Social gatherings and interaction of friends, 2. Increase in wealth, 3. Affection between sons and fathers, 4. Fondness of the couples for sex, 5. Use of appropriate, pleasant and timely words in conversation, 6. rise in status amongst equals, 7. Acquisition of desired goals and social approval and 8. Appreciation in congragations.

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति
प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च॥

बुद्धि, कुलीनता, इन्द्रियनिग्रह, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, अधिक न बोलना, शक्तिके अनुसार दान और कृतज्ञता—ये आठ गुण पुरुषकी ख्याति बढ़ा देते हैं।

The following eight qualities add to the lustre of a man—1.Wisdom, 2. Civilized behaviour, 3. Self-control, 4. Knowledge of *Sastra*, 5. Chivalry, 6. Being a man of few words, 7. Being charitable according to one's means and 8. Gratitude.

[विदुरनीति १।९८—१०४]

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०८०, शक १९४६, सन् २०२४, सूर्य-उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, चैत्र कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें १।२७ बजेतक	मंगल	हस्त दिनमें १२।२४ बजेतक	२६ मार्च	**तुलाराशि** रात्रिमें १। ३० बजेसे, **वसन्तोत्सव (होली)।**
द्वितीया ,, ३।६ बजेतक	बुध	चित्रा ,, २।६ बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ३। ४३ बजेसे।
तृतीया ,, ४।१९ बजेतक	गुरु	स्वाती ,, ४।२४ बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** दिनमें ४। १९ बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८। ५८ बजे।
चतुर्थी सायं ५। ८ बजेतक	शुक्र	विशाखा सायं ५।४६ बजेतक	२९ ,,	**वृश्चिकराशि** दिनमें ११। २५ बजेसे।
पंचमी ,, ५। २२ बजेतक	शनि	अनुराधा रात्रिमें ६।३६ बजेतक	३० ,,	**मूल** रात्रिमें ६। ३६ बजेसे।
षष्ठी ,, ५। ४ बजेतक	रवि	ज्येष्ठा ,, ६।५६ बजेतक	३१ ,,	**भद्रा** सायं ५। ४ बजेसे रात्रिशेष ४। ४२ बजेतक, **धनुराशि** रात्रिमें ६। ५६ बजेसे, **रेवतीका सूर्य** दिनमें ९। ५४ बजे।
सप्तमी दिनमें ४।१८ बजेतक	सोम	मूल ,, ६। ४७ बजेतक	१ अप्रैल	**मूल** रात्रिमें ६। ४७ बजेतक।
अष्टमी ,, ३। २ बजेतक	मंगल	पू०षा० ,, ६। १३ बजेतक	२ ,,	**मकरराशि** रात्रिमें १२। ०० बजेसे।
नवमी ,, १। ३१ बजेतक	बुध	उ० षा० सायं ५।१९ बजेतक	३ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १२। ३४ बजेसे।
दशमी ,, ११। ३६ बजेतक	गुरु	श्रवण दिनमें ४।५ बजेतक	४ ,,	**भद्रा** दिनमें ११। ३६ बजेतक, **कुम्भराशि** रात्रिमें ३। २२ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें ३। २२ बजे।
एकादशी दिनमें ९।२६ बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा ,, २।३८ बजेतक	५ ,,	**पापमोचनी एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी प्रात: ७। ७ बजेतक	शनि	शतभिशा ,, १।२ बजेतक	६ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ४। ४२ बजेसे, **मीनराशि** रात्रिशेष ५। ४७ बजेसे, **शनिप्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी रात्रिमें २।१७ बजेतक	रवि	पू० भा० ,, ११।२१ बजेतक	७ ,,	**भद्रा** दिनमें ३। २९ बजेतक।
अमावस्या ,, ११।५५ बजेतक	सोम	उ० भा० ,, ९। ४२ बजेतक	८ ,,	**सोमवती अमावस्या, मूल** दिनमें ९। ४२ बजेसे।

सं० २०८१ शक १९४६, सन् २०२४, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, चैत्र शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ९। ४३ बजेतक	मंगल	रेवती दिनमें ८। ८ बजेतक	९ अप्रैल	**चैत्र नवरात्र प्रारम्भ, पिंगल नाम संवत्सर, मेषराशि** दिनमें ८। ८ बजेसे। **पंचक समाप्त** दिनमें ८। ८ बजे।
द्वितीया ,, ७। ४५ बजेतक	बुध	अश्विनी प्रात: ६।४६ बजेतक	१० ,,	**मूल** प्रात: ६। ४६ बजेतक।
तृतीया सायं ६। ५ बजेतक	गुरु	कृत्तिका रात्रिशेष ४।५४ बजेतक	११ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ५। २७ बजेसे, **वृषराशि** दिनमें १०।४२ बजे, **मत्स्यावतार, गणगौर।**
चतुर्थी ,, ४। ४९ बजेतक	शुक्र	रोहिणी ,, ४। ३१ बजेतक	१२ ,,	**भद्रा** सायं ४। ४९ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी दिनमें ३।५५ बजेतक	शनि	मृगशिरा ,, ४। ३४ बजेतक	१३ ,,	**मिथुनराशि** सायं ४। ३२ बजेसे, **मेषसंक्रान्ति** रात्रिमें ११। १७ बजे।
षष्ठी ,, ३। ३१ बजेतक	रवि	आर्द्रा ,, ५। ७ बजेतक	१४ ,,	**सूर्योदयसे संक्रातिजन्य पुण्यकाल।**
सप्तमी ,, ३। ३८ बजेतक	सोम	पुनर्वसु अहोरात्र	१५ ,,	**भद्रा** दिनमें ३। ३८ बजेसे रात्रिमें ३। ५८ बजेतक।
अष्टमी ,, ४। १७ बजेतक	मंगल	पुनर्वसु प्रात: ६। ९ बजेतक	१६ ,,	**कर्कराशि** रात्रिमें ११। ५३ बजेसे, **श्रीदुर्गाष्टमी।**
नवमी सायं ५। २२ बजेतक	बुध	पुष्य ,, ७। ४२ बजेतक	१७ ,,	**श्रीरामनवमी, श्रीरामजन्म-महोत्सव।**
दशमी रात्रिमें ६।५५ बजेतक	गुरु	आश्लेषा दिनमें ९।४१ बजेतक	१८ ,,	**सिंहराशि** दिनमें ९। ४१ बजेसे।
एकादशी ,, ८।४६ बजेतक	शुक्र	मघा ,, १२। ० बजेतक	१९ ,,	**भद्रा** प्रात: ७।५० बजेसे रात्रिमें ८।४६ बजेतक, **कामदा एकादशीव्रत (सबका), मूल** दिनमें १२। ० बजेतक।
द्वादशी ,, १०।५० बजेतक	शनि	पू०फा० ,, २। ३४ बजेतक	२० ,,	**कन्याराशि** रात्रिमें ९। १४ बजेसे।
त्रयोदशी ,, १२।५४ बजेतक	रवि	उ०फा० सायं ५। १२ बजेतक	२१ ,,	**प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,, २। ४८ बजेतक	सोम	हस्त रात्रिमें ७। ४३ बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २। ४८ बजेसे।
पूर्णिमा रात्रिशेष ४। २६ बजेतक	मंगल	चित्रा रात्रिमें ९। ५९ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** दिनमें ३। ३७ बजेतक, **तुलाराशि** दिनमें ८। ५१ बजेसे, **पूर्णिमा, हनुमज्जयन्ती, वैशाख स्नान समाप्त।**

कृपानुभूति

श्रीओंकारेश्वरजीकी अद्भुत कृपा

घटना करीब १० वर्ष पूर्वकी है। मेरी पत्नी श्रीमती स्व० गीतादेवी और मैं दोनों सोमवती अमावस्यापर श्रीओंकारेश्वरजी (म०प्र०)-के लिये ट्रेनद्वारा चित्तौड़गढ़ जंक्शनसे रवाना होकर रात १२ बजे ओंकारेश्वररोड स्टेशन पहुँचे, वहाँसे बसद्वारा ओंकारेश्वरजीके लिये रवाना हुए। सोमवतीके कारण भीड़ बहुत थी, बस स्टैण्डसे पहले ही बस ड्राइवरने हमें उतार दिया। वहाँसे ओंकारेश्वरजीका मन्दिर करीब ५ कि०मी० पड़ता है। रातका १ बज रहा था। मेरी पत्नीके पैरोंमें तकलीफ है, वह १ कि०मी० भी नहीं चल सकती थी। जानेका कोई साधन नहीं था, सब मुसाफिर पैदल ही जा रहे थे तथा मेरे पास सामान भी था, अब हमने वहाँ सोये हुए कुलियोंको उठाया और नर्मदाजीतक ले जानेका आग्रह किया। एक भी आदमी साधन लेकर जानेको तैयार नहीं हुआ। हम चल सकते नहीं, क्या करें, जंगलमें खड़े थे, ठहरनेकी कोई व्यवस्था नहीं थी। अब क्या करें? बड़ी मुश्किलसे १ कि०मी० आये। अब तो मेरी पत्नीके पैर भी नहीं उठते थे और न मेरेसे चला जाता था। कुलियोंको १०० रुपये देनेको तैयार थे, पर वे भी चलनेको तैयार न थे। हमें कुछ भी साधन न मिला, दूसरे लोग चले जा रहे थे। अब हम अकेले ही पड़ गये, हमारे साथ कोई नहीं, ऐसी परिस्थितिमें मेरी पत्नीने आवेशमें आकर प्रभुको पुकारा और खूब सुनायी, तुम आशुतोष अवढरदानी और करुणानिधान हो! भक्तोंकी पुकार सुननेमें देरी नहीं करते, अब तुम्हें क्या हो गया, हम जंगलमें पड़े हैं, पैरोंसे चल सकते नहीं और कोई साधन नहीं मिलता। क्या हमारी पुकार नहीं सुनते? क्या तुम निर्दयी हो, कुछ दया नहीं आती? हम अब तुम्हारे द्वार कभी नहीं आयेंगे। ऐसा रोष करके वह आँख मीचकर नीचे बैठ गयी। तभी मैं देखता हूँ कि एक बच्चा लारी लेकर मेरे पास आया और बोला, 'पार चलना है?' मैंने कहा, 'क्या लोगे?' उसने २० रुपये माँगे। मैंने कहा, 'तुम छोटे हो लारी कैसे खींचोगे? उसने तो झटसे मेरी पत्नीको बैठाया और सामान लेकर रवाना हो गया। देखते-ही-देखते वह एक सपाटेसे चला, रास्तेमें बहुत भीड़ थी, उसे पार करता हुआ नर्मदाजीके पुलको पारकर छन्याति धर्मशाला जहाँ हमें जाना था, पहुँचा दिया। पत्नीको एवं सामान उतार ही रहा था कि मैं जल्दीसे पहुँचा और उसे २० रुपये दिये, वह पैसे लेते ही रवाना हो गया। लाइटें बन्द थीं, मैं उसे देख भी नहीं पाया।

मैंने धर्मशाला मैनेजरको जगाया, तो उसने कहा—इतनी रात २ बजे यहाँ कैसे आये? अभी तो कोई साधन नहीं मिलता। मैंने कहा, 'एक लारी मिली और उसने हमें यहाँ पहुँचाया।' वे मैनेजर चक्करमें पड़ गये और बोले—रातको तो लारी चलती नहीं। हम तुरंत बाहर आये और करीब १ कि०मी० तक दौड़े, पर न तो कोई लारी न कोई चलानेवाला नजर आया। तब मैनेजरने कहा—यह तो एक आश्चर्यकी बात है और प्रभुका चमत्कार ही है! मैंने तो उस बच्चेकी शक्ल भी नहीं देखी, पत्नीने जरूर देखा। सो गोरा रंग, तीखी नाक एवं हरा कमीज देखा और उम्र १० साल होगी। आँखोंसे तो ओझल हो गये, लेकिन वे भगवान् ही थे, जो बच्चेके रूपमें आकर हमें हमारे गन्तव्यतक पहुँचा दिया। कल्याणस्वरूप सदाशिवकी इसे अपने ऊपर महान् अहैतुक कृपा मानता हूँ। हम करीब ४० वर्षसे वहाँ जाते हैं और उनपर हमारा पूरा-पूरा विश्वास है तथा उनके कई चमत्कार हमने देखे हैं। ऐसे करुणानिधानको हम बार-बार प्रणाम करते हैं। [**श्रीरामप्रसादजी अगाल**]

पढ़ो, समझो और करो

(१)

भगवान्‌का मंगल-विधान

दिनकरकी प्रखर रश्मिमालासे प्रतप्त होकर चरवाह भागीरथीके पुण्यतोयमें स्नानार्थ प्रविष्ट हो गये। गोसमुदायने सुखद तरु-छायाके नीचे बैठकर जुगाली करना प्रारम्भ कर दिया। भैंसें तो ग्वालोंसे भी पूर्व जलकेलि-सुखका अनुभव करनेके लिये जलमें प्रवेश कर चुकी थीं। जाह्नवीकी धारा अविरल गतिसे प्रवाहित हो रही थी। अकस्मात् एक चरवाहेकी दृष्टि एक बहती हुई वस्तुपर पड़ी, उसके बतानेपर दूसरेने, जो कुछ आयुमें बड़ा था, कहा—'अरे, यह तो शव है, इसमें क्या आश्चर्य!' तीसरेने कहा—'लाओ इसे निकालें' 'व्यर्थ, क्या लाभ?' परंतु बहुमतसे शव निकालना ही निश्चित हुआ। एकने तैरकर शव पकड़ लिया, निकालकर बाहर ले आया। 'अरे कोई युवती है, बेचारी असमयमें ही भगवान्‌के यहाँ बुला ली गयी।' इसके पेटमें पानी भर गया है, 'यह तो हाथ हिला रही है—शायद अभी चेतना है।' सहीमें ही विधिकी इच्छा, कुछ उपचार करनेपर वह षोडशवर्षीया तरुणी उठकर बैठ गयी, इधर-उधर आश्चर्यचकित होकर देखने लगी, कुछ देर बाद रोना प्रारम्भ कर दिया उसने।

परम सुन्दरी बालिकाको देखकर सभी ग्वाले 'इसे मैं अपनी स्त्री बनाऊँगा' कहकर परस्पर झगड़ने लगे। वर्षोंसे एक साथ मिलकर रहनेका भाव समाप्त हो गया, रोटी बाँटकर खानेवाले ग्वाले मायासे विमोहित होकर संसारके इस भ्रम-जालमें फँसकर एक-दूसरेके प्राणोंके घातक बननेके लिये आतुर हो उठे। ठीक, इसी समय एक महात्मा उपस्थित हो गये, सौम्य-स्वरूपने गम्भीर स्वरमें कहा—'अरे भले आदमियो, भगवान्‌से डरो, जिसे तुमने बचाया, वह तुम्हारी बहिन है, तुम, तुम…' इसके आगे वे कुछ कहते कि ग्वाले वहाँसे भाग गये। बालिका उठकर महात्माके चरणोंमें गिर पड़ी। उन्होंने कहा—'बेटी! उठो, चिन्ता न करो, तुम हमारी कुटियापर चलकर रहो, स्वस्थ हो जानेपर स्वेच्छासे जहाँ चाहोगी, तुम चली जाना।' लड़कीको धैर्य बँधा, सान्त्वनापूर्ण शब्दोंने एक बार फिर उसकी पलकोंको गीला कर दिया। महात्माने आँख मूँदकर एक क्षण प्रभुका ध्यान किया, फिर एक ओर चल दिये। बालिका भी उनके पीछे-पीछे हो ली। मुनिवर अपनी ईश्वर-भक्तिमें लगे रहे। बालिका सदैव घूँघट निकाले रहती। अभी उसके दुःखोंका अन्त न हुआ था। एक दिन महात्माने बड़े प्यारसे कहा—'बेटी! तुम यदि अपने घर जाना चाहो, तो तुम्हें छोड़ आऊँ?' बालिकाने कहा—'इस नश्वर संसारमें है ही क्या? मेरे माता-पिता और छोटी बहिन भी मेरे साथ ही बह गयी थीं, अब तो मुझे अपने ही चरणोंमें आश्रय दीजिये। अब आप मेरे पिता हैं। मैं कहीं नहीं जाना चाहती। हाँ, मेरे एक भाई विदेश पढ़ने गये थे, अब पता नहीं कहाँ होंगे! मेरा पाणिग्रहण भी हो गया था, परंतु वे अब मुझसे स्नेह करते हुए भी दूर हैं।' मायापाशविमुक्त महात्मा उठकर बिना कुछ बोले आँखें बन्द किये ही ध्यानके लिये चल पड़े।

उन्नाव जिलेके रायपुर ग्रामके समीप ही ये दोनों रहा करते थे। बाबाके बागमें उनका सुन्दर आश्रम था। एक दिन आखेट करते हुए एक ताल्लुकेदार अपने दल-बलके साथ वहाँ पधारे, उनकी दृष्टि बालिकाको देखकर कुदृष्टिमें बदल गयी। उन्होंने महात्माको प्रलोभन देकर उस बालिकाको प्राप्त करना चाहा, किंतु महात्माजीके चरित्रने रईस महोदयको कुपित कर दिया। उन्होंने षड्यन्त्र रच दिया। एक दम्पतीसे उन्होंने न्यायालयमें दावा करवा दिया कि 'यह हमारी लड़की है। यह दुष्ट साधु भिक्षा माँगने आया करता था और इसे बहकाकर भगा लाया। इसका विवाह हमने अमुक रईसके साथ करनेका वचन दे दिया था।' पुलिसने दोनोंको पकड़कर कारागारमें बन्द कर दिया। यथासमय न्यायाधीशके सम्मुख उपस्थित होकर महात्माने बालिकाके प्राप्त होनेकी सच्ची कहानी सुना दी, साथ ही उन्होंने यह भी कहा—'ईश्वर जानता है, कुदृष्टि तो दूर रही, मैंने आजतक इस लड़कीका मुखतक नहीं देखा।' लड़की भी घूँघट निकाले खड़ी थी। सरकारी वकील और न्यायाधीश दोनों ही विचित्र स्थितिमें थे। कहानी इस प्रकार गढ़ी गयी थी कि अविश्वास करना कठिन हो रहा था। पुलिसवाले भी उत्कोचके प्रलोभनसे रईसका ही साथ दे रहे थे।

'अच्छा बेटी! तुम ठीक-ठीक बताओ, क्या बात है?' न्यायाधीशने कहा। लड़की हिचकियाँ भर-भरकर रोने लगी। अत्यधिक धीरज बँधानेके बाद उसने कहा—'मैं क्या बताऊँ? मेरे ऊपर तो ईश्वर ही नाराज है। मैं मुजफ्फरनगर जिलेके सुप्रसिद्ध वकील स्वर्गीय शंकरप्रसादजीकी लड़की हूँ—' न्यायाधीशकी आँखें खुली-की-खुली रह गयीं? लक्ष्मी? लक्ष्मी? हे ईश्वर! मैं क्या देख रहा हूँ, मेरी बहिन लक्ष्मी? उसने अपने भाईका स्वर पहचानकर घूँघट खोल दिया। 'मैं ही हूँ हतभागिनी। भाई साहेब! आप इंग्लैण्डसे कब आये?' महात्माकी आँखोंसे भी अश्रुधारा बह रही थी, भाई और बहिन न्यायालयमें गले मिल रहे थे। न्यायाधीश अमरनाथ महात्माके चरणोंमें गिर पड़े। भगवान्‌की बड़ी कृपा है। आपने हमारी इज्जत रख ली। महात्माने कहा—'मैं भी तुम्हारा बड़ा भाई काशीनाथ हूँ, जिसे पिताजीने अयोग्य होनेके कारण घरसे निकाल दिया था, मुझे अपने कर्मोंके लिये पश्चात्ताप था, परंतु अब नहीं।' पार्श्वस्थित सरकारी वकील मोहनलालकी भावभंगिमा दर्शनीय थी। वे इस लड़कीके पति थे। उन्हें यह नहीं मालूम था कि एक दिन वकालत घरमें ही करनी पड़ेगी। न्यायाधीशने केवल एक बार मोहनलालकी ओर देखा, फिर अपने बड़े भाईसे कहा—'ये हैं लक्ष्मीके पति।' महात्माने दोनोंका हाथ लेकर एक-दूसरेको पकड़ा दिया। तीनों ही हाथ जोड़े खड़े थे। महात्माने कहा—'आज मेरी साधना सफल हो गयी। इतना अवश्य ध्यान रखना! इन निरीह ताल्लुकेदार-जैसे पापियोंको तुम कोई दण्ड न देना। ईश्वर स्वयं इनके कियेका फल देगा। अच्छा मैं जा रहा हूँ।' इस मिलन-मुहूर्तपर सभी दर्शक उत्फुल्ललोचन थे।

महात्माके चरण शीघ्र-शीघ्र पड़ रहे थे। लक्ष्मी अपने पति और भाईके साथ अपलक दृष्टिसे महात्माके चरण देख रही थी। भगवान्‌के इस मंगल-विधानको देखकर सबकी आँखोंमें भावोंका सागर उमड़ रहा था।*

[श्रीशिवप्रसादजी शुक्ल]

(२)

प्रशंसाके प्रति वितृष्णा

सन् १९३१ की बात है। सन्त बिनोवाभावे आश्रमकी डाक देख रहे थे। वे एक-एक पत्रको पढ़कर विषयके अनुसार उन्हें पृथक्-पृथक् रखते जाते थे। उनके समीप बैठे थे प्रसिद्ध देशभक्त श्रीजमनालालजी बजाजके सुपुत्र श्रीकमलनयन बजाज। अवस्था छोटी ही थी। वे कौतूहलके साथ पत्रोंकी बनावट, उनपर लिखे गये पतेकी लिखावट आदिको देख रहे थे। अचानक श्रीबिनोवाजीने एक लिफाफा उठाया, जिसकी बनावट तथा उसपर लिखे गये पतेके अक्षरोंसे स्पष्ट समझा जा सकता था कि वह पत्र महात्मा गांधीका था। उस समयतक महात्मा गांधीके प्रति देशमें बड़ी ही आदर-बुद्धिकी प्रतिष्ठा हो चुकी थी। लोग उनके हस्ताक्षरोंको प्राप्त करनेके लिये व्यग्र एवं प्रयत्नशील रहते थे। इसके अतिरिक्त महात्माजीके पत्र बड़े ही महत्त्वपूर्ण एवं शिक्षाप्रद होनेके कारण लोग उनका संग्रह करने लगे थे। श्रीकमलनयन बजाजको तो बाल्यकालसे ही बापूका प्यार प्राप्त हुआ था। अतः बापूके पत्रोंके प्रति उनके मनमें विशेष अभिरुचि होनी स्वाभाविक थी। वे उस पत्रको बड़े गौरसे देखने लगे।

श्रीबिनोवाजीने पत्र खोला, उसे आद्योपान्त पढ़ा। उनके चेहरेपर वितृष्णा-जनित उद्विग्नताकी रेखाएँ उभर आयीं और उन्होंने पत्रको फाड़कर रद्दीकी टोकरीमें फेंक दिया। श्रीकमलनयन यह सब बड़े ध्यानसे देख रहे थे। बापूके पत्रको इस प्रकार अरुचि-सूचक मुद्रामें पढ़ना और पढ़नेके पश्चात् उसे फाड़कर रद्दीकी टोकरीमें फेंक देना—बापूके प्रति गहरी श्रद्धा और प्यार रखनेवाले श्रीबिनोवाजीद्वारा यह सब होते देख उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ। उन्होंने लपककर रद्दीकी टोकरीमेंसे पत्रके फटे हुए टुकड़े उठा लिये। पत्र अधिक फटा हुआ नहीं था; अतएव उसे जोड़कर पढ़नेमें विशेष असुविधा नहीं हुई। पत्रमें लिखा था—'तुम्हारे-जैसी किसी दूसरी महान् आत्मासे मेरा सम्पर्क आजतक नहीं हुआ।'

श्रीबिनोवाजीके प्रति बापूके इतने सुन्दर उद्‌गार! फिर क्या हेतु था, जो उन्होंने बापूके पत्रको फाड़ दिया। युवक श्रीकमलनयनने श्रीबिनोवाजीसे पूछ ही तो लिया—'आपने बापूका पत्र क्यों फाड़ा?'

श्रीबिनोवाजीने सहज भावसे उत्तर दिया—'अपने गुरुजनसे भी स्नेह या गफलतके कारण कुछ भूल हो

* कहा जाता है कि कहानीमें लिखित घटना सच्ची है। केवल नाम-जाति आदि बदले हुए हैं। [कल्याण वर्ष ३०]

सकती है। श्रद्धालुओंको चाहिये कि वे उस भूलको महत्त्व न दें।'

'बापूने इस पत्रमें भूल की है—यह आप कैसे मानते हैं?'—श्रीकमलनयनने पुन: पूछा।

श्रीबिनोवाजीने कहा—'बापूसे लाखों लोग मिले हैं—एक-से-एक महान् विभूतियाँ और एक-से-एक महान् आत्माएँ। दो ही बातें हैं—या तो बापू उन महान् विभूतियोंको नहीं पहचान सके अथवा पत्र लिखते समय उनके बड़प्पनकी विस्मृति उन्हें हो गयी। यही हेतु है कि उन्होंने मेरे सम्बन्धमें ऐसे बड़प्पनके शब्द लिख दिये। मैं यह ठीक समझता हूँ कि उन्होंने स्नेह या मोहके कारण ही ऐसी अतिशयोक्तिपूर्ण बात लिख दी है। इस प्रकार लिखनेसे उन महान् विभूतियोंकी महानता तो कम नहीं हुई, किंतु बापूद्वारा उनकी महानताका आदर न होनेकी भूल तो हो ही गयी। हम श्रद्धालुओंको बापूकी इस भूलको क्यों सहेजकर रखना चाहिये?'

श्रीकमलनयनने पुन: तर्क किया—'बापूद्वारा भूल नहीं हो सकती। वे एक-एक शब्द सोच-समझकर लिखते हैं। सचमुच उन्हें आप-जैसी महान् आत्मा और न मिली हो।'

श्रीबिनोवाजीने विनम्रताभरे शब्दोंमें कहा—'अच्छा, मान लेते हैं कि बापूने सोच-समझकर ही लिखा है। हो सकता है, यह सच भी हो। परंतु उससे मुझे क्या लाभ? उससे यदि कुछ हो सकता भी है तो अहंकार ही पैदा होगा।'

श्रीकमलनयनमें युवावस्थाका जोश उभर आया। वे आवेशके स्वरमें बोल उठे—'बापू-जैसे महापुरुषकी लिखी हुई चीज, भले ही वह आपके ही बारेमें क्यों न हो, केवल आपके लिये नहीं दुनियाके लिये है। उसे फाड़नेका आपको कोई अधिकार नहीं।'

श्रीबिनोवाजी समझ गये कि युवक श्रीकमलनयन आवेशमें हैं। उन्होंने बड़े ही शान्तभावसे उन्हें समझाया—'बापूने जो कुछ मेरे सम्बन्धमें लिखा है, उसमें महत्त्वकी वस्तु है—उनका स्नेह, प्यार, विश्वास, यह मैंने ग्रहण कर लिया। बाकीको नष्ट कर देनेमें ही लाभ है। यदि बापूकी मान्यता सच है तो मेरे पत्र फाड़नेसे वह नष्ट नहीं हो जायगी। लेकिन यदि वह उनका मोह है तो उसे रखनेमें हानि ही होगी। इसलिये मैंने बापूका पत्र फाड़नेमें कोई जोखिम नहीं समझी और न उसे रखनेमें कोई लाभ।'

प्यारभरा समाधान पाकर श्रीकमलनयन सन्तुष्ट हो गये।

(३)

ईमानदारी आज भी कायम है

नवम्बर, १९७३ की बात है। कूचबिहार जिलेके निवासी श्रीगोपीनाथ मैत्रकी भूमि सरकारने अधिगृहीत कर ली। भूमिके एवजमें एक हजार रुपये उन्हें देनेका आदेश हुआ। रुपये लेनेके लिये श्रीमैत्र जलपाईगुड़ीके जिलाधिकारी महोदयके कार्यालयमें उपस्थित हुए। कैशियरने आदेश देखकर श्रीमैत्रको रुपयोंका भुगतान कर दिया; किंतु संयोगकी बात—दस रुपयेके सौ नोटोंका बण्डल देनेके स्थानपर कैशियरने भूलसे सौ रुपयेके सौ नोटवाला बण्डल श्रीमैत्रको दे दिया। इसपर मजेकी बात यह कि बण्डल देते हुए उन्होंने श्रीमैत्रसे कहा—'ठीकसे गिनकर ले जाना।' श्रीमैत्रने वहीं बैठकर नोट गिने—पूरे १०० नोट थे। कैशियर एवं श्रीमैत्र—दोनोंको मतिभ्रम हो गया; दोनोंको ही भूल समझमें नहीं आयी।

रुपये लेकर श्रीमैत्र घर आये। अपने लड़कोंके सामने जब उन्होंने रुपये गिने, तब उन्हें होश आया कि ये तो सौ रुपयेके १०० नोट हैं और इस प्रकार एक हजारके बदले वे दस हजार रुपये ले आये हैं। अब तो श्रीमैत्र बेचैन हो गये। वे पछताने लगे—'एक हजार रुपयेके बदले मैंने दूसरेके दस हजार रुपये कैसे स्वीकार कर लिये!'

पिताकी व्यथाको देखकर बच्चोंने उन्हें समझाया—'नौ हजार रुपये आप वापस कर आइये।' बच्चोंकी बातसे पिताको सन्तोष हुआ। बड़े लड़केने टेलीफोन दफ्तरमें जाकर जलपाईगुड़ीके उपायुक्तको फोनपर यह घटना बतायी। श्रीउपायुक्त महोदयने विभागीय कर्मचारीको हल्दीवाड़ी भेजा। वहाँके थानेके अधिकारियोंके सामने श्रीमैत्रने विभागीय व्यक्तिको नौ हजार रुपये लौटा दिये।

थानेके अधिकारी तथा उपस्थित सभी व्यक्तियोंने एक स्वरमें कहा—'ईमानदारी आज भी कायम है!'

[कल्याण वर्ष ४८]

मनन करने योग्य

अहंकार-नाश

किसी राष्ट्रकार्य-धुरन्धर अथवा साधारण-से व्यक्तिमें समस्त दुर्गुणोंका अग्रणी अहंकार या अभिमान जब प्रवेश पा जाता है, तब उसके कार्योंमें होनेवाली उन्नतिकी बात तो दूर रही, किये हुए कार्योंपर भी पानी फिरनेमें विलम्ब नहीं लगता। पर यदि उसे यथासमय सचेत कर दिया गया तो वह यशके शिखरपर पहुँच ही जाता है। इस प्रकारकी अनेक कथाएँ अपने इतिहास-पुराणादिमें हैं। अभी केवल ३५० वर्ष पूर्वकी एक 'सत्-कथा' इस प्रकार है।

हिन्दू-स्वराज्य-संस्थापक श्रीशिवाजी महाराजके सद्गुरु श्रीसमर्थ रामदास स्वामी महाराजका तप:सामर्थ्य और उनका किया हुआ राष्ट्रकार्य अलौकिक है। सद्गुरुके द्वारा निर्दिष्ट मार्गका अनुसरण करके श्रीश्रीभवानी-कृपासे श्रीशिवाजी महाराजने कई किले जीत लिये। उस समय किलोंका बड़ा महत्त्व था। इसलिये जीते हुए किलोंको ठीक करवानेका एवं नये किलोंके निर्माणका कार्य सदा चलता रहता था और इस कार्यमें हजारों मजदूर सदा लगे रहते थे। सामनगढ़ नामक किलेका निर्माण हो रहा था, एक दिन उसका निरीक्षण करनेके लिये श्रीशिवाजी महाराज वहाँ गये। वहाँ बहुसंख्यक श्रमिकोंको कार्य करते देखकर उनके मनमें एक ऐसी अहंकार-भरी भावनाका अंकुर उत्पन्न हो आया कि 'मेरे कारण ही इतने जीवोंका उदर-निर्वाह चल रहा है।' इसी विचारमें वे तटपर घूम रहे थे। अन्तर्यामी सद्गुरु श्रीसमर्थ इस बातको जान गये और 'जय जय रघुबीर समर्थ'की रट लगाते हुए अकस्मात् न जाने कहाँसे वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखते ही श्रीशिवाजी महाराजने आगे बढ़कर दण्डवत्-प्रणाम किया और पूछा, 'सद्गुरुका शुभागमन कहाँसे हुआ?' हँसकर श्रीसमर्थ बोले—'शिवबा! मैंने सुना कि यहाँ तुम्हारा बहुत बड़ा कार्य चल रहा है, इच्छा हुई कि मैं भी जाकर देखूँ। इसीसे चला आया। वाह वाह शिवबा! इस स्थानका भाग्योदय और इतने जीवोंका पालन तुम्हारे ही कारण हो रहा है।' सद्गुरुके श्रीमुखसे यह सुनकर श्रीशिवाजी महाराजको अपनी धन्यता प्रतीत हुई और उन्होंने कहा—'यह सब कुछ सद्गुरुके आशीर्वादका फल है।'

इस प्रकार बातचीत करते हुए वे किलेसे नीचे, जहाँ मार्ग-निर्माणका कार्य हो रहा था, आ पहुँचे। मार्गके बने हुए भागमें एक विशाल शिला अभी वैसी ही पड़ी थी। उसे देखकर सद्गुरुने पूछा—'यह शिला यहाँ बीचमें क्यों पड़ी है?' उत्तर मिला—'मार्गका निर्माण हो जानेपर इसे तोड़कर काममें ले लिया जायगा।' श्रीसद्गुरु बोले—'नहीं, नहीं, कामको हाथों-हाथ ही कर डालना चाहिये; अन्यथा जो काम पीछे रह जाता है, वह हो नहीं पाता। अभी कारीगरोंको बुलाकर इसके बीचसे दो भाग करा दो।' तुरन्त कारीगरोंको बुलाया गया और उस शिलाके दो समान टुकड़े कर दिये गये। सभी लोगोंने देखा कि अन्दर एक भागमें ऊखल-जितना गहरा एक गड्ढा था, जिसमें पर्याप्त जल भरा था और उसमें एक मेंढक बैठा हुआ था। उसे देखकर श्रीसद्गुरु बोले—'वाह, वाह, शिवबा, धन्य हो तुम! इस शिलाके अन्दर भी तुमने जल रखवाकर इस मेंढकके पोषणकी व्यवस्था कर रखी है।'

बस, पर्याप्त थे इतने शब्द श्रीशिव-छत्रपतिके लिये। उनके चित्तमें प्रकाश हुआ। उन्हें अपने अहंकारका पता लग गया और पता लगते ही 'इतने लोगोंके पेट मैं भरता हूँ'—इस अभिमान-तिमिरका तुरन्त नाश हो गया। उन्होंने तुरन्त श्रीसद्गुरुके चरण पकड़ लिये और अपराधके लिये क्षमा-याचना की। [**श्रीयुत एम०एन० धारकर**]

गीताप्रेससे प्रकाशित—श्रीरामाङ्क अब उपलब्ध

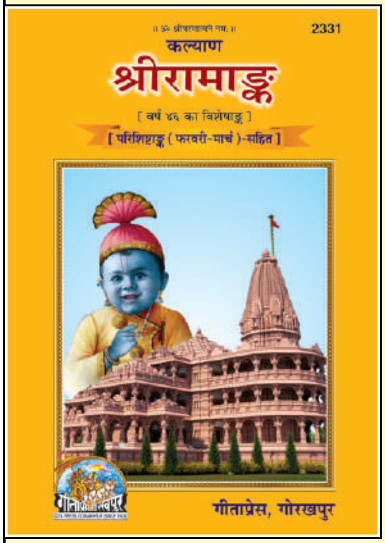

श्रीरामाङ्क (कोड 2331)—श्रीरामललाके प्राणप्रतिष्ठाके शुभ अवसरपर सन् 1972 में कल्याणके विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित **श्रीरामाङ्क** का पुनर्प्रकाशन किया गया है। भगवान् श्रीराम भारतीय अध्यात्म एवं संस्कृतिके आधार-स्तम्भ हैं, इनकी आराधना प्रत्येक आस्तिकके घरमें होती है। इस अंकमें भगवान् श्रीरामके विभिन्न आदर्शों, उनके प्रभाव, महत्त्व आदिपर प्रकाश डालनेका प्रयास किया गया है। इसमें भगवान् श्रीरामके परिकरोंका संक्षिप्त परिचय एवं प्रसिद्ध रामभक्तोंके सुन्दर आख्यान भी दिये गये हैं; साथ ही श्रीरामसम्बन्धी अनुष्ठान, रामकवच, सीताकवच, भरतकवच, लक्ष्मणकवच, शत्रुघ्नकवच, हनुमत्कवच आदि बहुतसे स्तोत्र भी दिये गये हैं। अधिक-से-अधिक सामग्री उपलब्ध हो सके, इसके लिये फरवरी एवं मार्चके अंकोंकी सामग्रीके साथ ही भगवान्‌की **लीलाके 106 रंगीन चित्र भी दिये गये हैं।** आशा है यह अंक सभीके लिये उपयोगी और संग्रहणीय होगा। मूल्य ₹400, डाकखर्च ₹90

चित्रमय श्रीरामचरितमानस

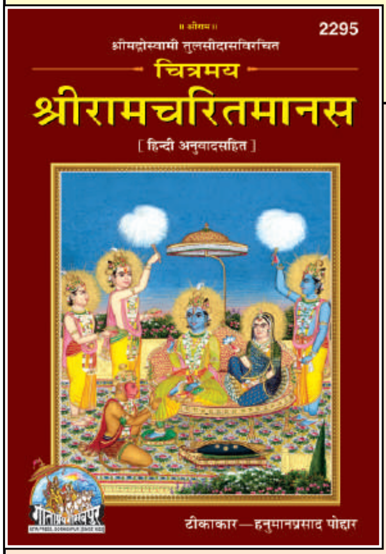

चित्रमय श्रीरामचरितमानस, सटीक (कोड 2295) ग्रन्थाकार [चार रंगोंमें]—श्रीरामचरितमानसका स्थान जगत्‌के साहित्यमें निराला है। साहित्यके सभी रसोंका आस्वादन करानेवाला तथा गार्हस्थ्य-जीवन, आदर्श पातिव्रतधर्म, भ्रातृधर्मके साथ-साथ सर्वोच्च भक्ति, ज्ञान, त्याग, वैराग्य तथा सदाचारकी शिक्षा देनेवाला—सबके लिये समान उपयोगी है। भगवान् श्रीरामकी लीलाका दर्शन करानेके उद्देश्यसे 300 से अधिक लीलाओंके मनमोहक रंगीन चित्रोंके साथ चार रंगोंमें आर्टपेपरपर प्रकाशित किया गया है। मूल्य ₹1600, **डाकखर्च फ्री।**

संक्षिप्त चित्रमय शिवपुराण

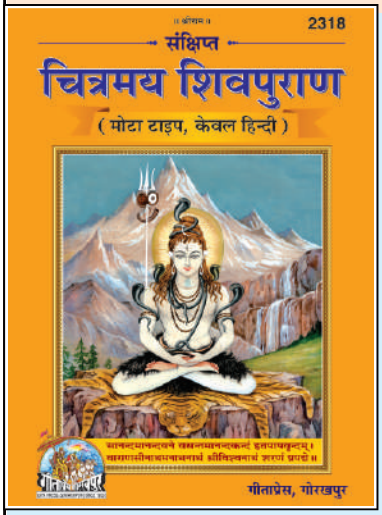

संक्षिप्त चित्रमय शिवपुराण (कोड 2318) [ग्रंथाकार, बड़े अक्षरोंमें, चार रंगोंमें, आर्टपेपरपर] —215 से अधिक लीलाके रंगीन चित्रोंके साथ पहली बार प्रकाशित किया गया है। इस पुराणमें परात्पर ब्रह्म शिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, महिमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। इसमें इन्हें पंचदेवोंमें प्रधान अनादि सिद्ध परमेश्वरके रूपमें स्वीकार किया गया है। शिव-महिमा, लीला-कथाओंके अतिरिक्त इसमें पूजा-पद्धति, अनेक ज्ञानप्रद आख्यान और शिक्षाप्रद कथाओंका सुन्दर संयोजन है। रंगीन आकर्षक एवं मजबूत डिब्बेमें पैक, विवाह एवं अन्य उत्सवोंपर उपहार देने योग्य। मूल्य ₹1500, **डाकखर्च फ्री।**

प्र० ति० 20-01-2024
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2023-2025
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2023-2025

'कल्याण'के पाठकोंसे नम्र निवेदन

फरवरी माह सन् 2024 ई० का अङ्क आपके समक्ष है। यह अङ्क उन सभी सदस्योंको भी भेजा गया है, जिनको सन् 2024 ई० का विशेषाङ्क **'संक्षिप्त आनन्दरामायण-अङ्क'** वी०पी०पी० द्वारा भेजा गया है, लेकिन उसका भुगतान हमें प्राप्त नहीं हो पाया है। जिन सदस्योंकी वी०पी०पी० किसी कारणसे वापस हो गयी है, वे सदस्यता-शुल्क भेजकर रजिस्ट्रीसे अथवा वी०पी०पी० से भी पुनः मँगवा सकते हैं। जिन सदस्योंको सदस्यता-शुल्क भेजनेके उपरान्त भी किसी कारण वी०पी०पी०से अङ्क प्राप्त हो गया है, उनसे अनुरोध है कि वे किसी अन्य व्यक्तिको वह अङ्क देकर सदस्य बना दें और उनका नाम, पूरा पता, मोबाइल नम्बर तथा अपनी सदस्य-संख्या आदिका विवरण हमें भेज दें, जिससे उन्हें नियमित सदस्य बनाकर भविष्यमें 'कल्याण' सीधे उनके पतेपर भेजा जा सके। यदि नया सदस्य बनाना सम्भव न हो तो पूर्व जमा रकमकी वापसी या समायोजन-हेतु e-mail : **kalyan@gitapress.org / 09235400242/244** पर सम्पर्क करना चाहिये। इसके अतिरिक्त **'कल्याण'** के विषयमें किसी भी जानकारीके लिये **9648916010/8188054404** पर SMS एवं WhatsApp भी कर सकते हैं।

एकवर्षीय शुल्क ₹500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे
एकवर्षीय शुल्क ₹300 मासिक अंक साधारण डाकसे
पञ्चवर्षीय शुल्क ₹2500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे
पञ्चवर्षीय शुल्क ₹1500 मासिक अंक साधारण डाकसे

योग एवं आरोग्यपर तीन प्रमुख प्रकाशन—अब उपलब्ध

पातञ्जलयोग-प्रदीप (कोड 47) ग्रन्थाकार—श्रद्धेय श्रीओमानन्द महाराजद्वारा प्रणीत इस ग्रन्थमें पातञ्जलयोग-सूत्रोंकी व्याख्या तत्त्ववैशारदी, भोजवृत्ति तथा योगवार्तिकके अनुसार विस्तृत रूपसे की गयी है। इसमें उपनिषदों तथा भारतीय दर्शनोंके विभिन्न तत्त्वोंकी सुन्दर समालोचना है। मूल्य ₹260

योगाङ्क (कोड 616) ग्रन्थाकार—इसमें योगकी व्याख्या तथा योगका स्वरूप-परिचय एवं प्रकार और योग-प्रणालियों तथा अङ्ग-उपाङ्गोंपर विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त इसमें अनेक योगसिद्ध महात्माओं और योग-साधकोंके जीवन-चरित्रका वर्णन है। मूल्य ₹370

आरोग्य-अङ्क [संवर्धित संस्करण] (कोड 1592) ग्रन्थाकार—विभिन्न चिकित्सा-पद्धतियों, घरेलू औषधियों तथा स्वास्थ्यरक्षापर संगृहीत अनेक उपयोगी लेखोंका संग्रह है। मूल्य ₹300

GITA PRESS, GORAKHPUR [SINCE 1923]
e-mail : **booksales@gitapress.org**—थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
Gita Press web : **gitapress.org**—सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।
गीताप्रेसकी पुस्तकें Online कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये—
www.gitapress.org; gitapressbookshop.in
If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)